अक्तूबर-दिसंबर 1991

वर्ष: 23 ● अंक: 4

A. R. ARYA
SCIENTIFIC OFFICER
GOVERNMENT OF INDIA
BHABHA ATOMIC RESEARCH CENTRE
TROMBAY, BOMBAY - 400 085.

वैज्ञानिक

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद की पत्रिका
(भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र के सौजन्य से प्रकाशित)

च क्लैंप विधि

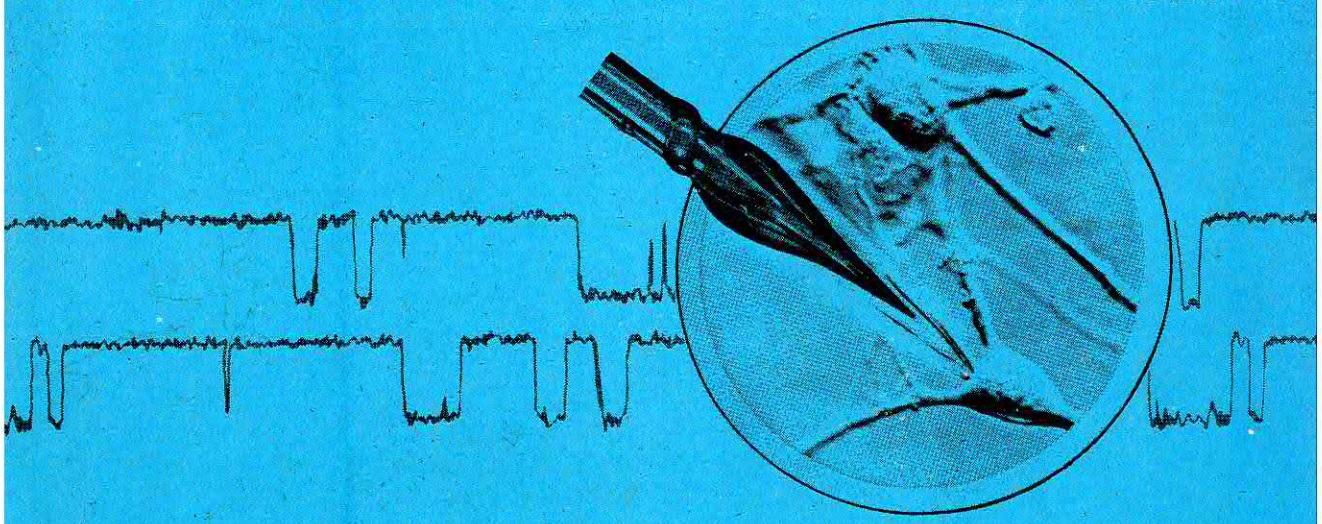

हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद

हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के सृजन व प्रचार प्रसार हेतु परिषद नियमित रूप से त्रैमासिक पत्रिका **वैज्ञानिक** का प्रकाशन, विज्ञान गोष्ठियों, वार्ताओं एवं अखिल भारतीय लेख प्रतियोगिता का आयोजन करती है।

परिषद की सदस्यता एवं **वैज्ञानिक** पत्रिका का शुल्क (रु.) :

	परिषद सदस्यता			वैज्ञानिक शुल्क 5 रु. प्रति	
	एक वर्ष	आजीवन	प्रवेश शुल्क	एक वर्ष	तीन वर्ष
व्यक्तिगत	15	100	1	15	40
संस्थागत	25	250	1	25	70

1. वैज्ञानिक विशेषांकों का मूल्य अलग से निर्धारित होगा।
2. वर्तमान नियमानुसार परिषद के सदस्यों को वैज्ञानिक निःशुल्क भेजी जाती है।
3. सभी शुल्क **हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद** के नाम से **डिमांड ड्राफ्ट** (बम्बई) अथवा **भारतीय पोस्टल आर्डर** द्वारा ही भेजें। **कृपया बम्बई से बाहर के चैक व मनीऑर्डर द्वारा शुल्क** न भेजें।

'वैज्ञानिक' में विज्ञापन

हिन्दी में प्रकाशित होने वाली विज्ञान पत्रिकाओं में **वैज्ञानिक** अग्रणी है। देश के सभी मुख्य वैज्ञानिक संस्थान इसके ग्राहक हैं। इस पत्रिका में आपके विज्ञापन आमंत्रित हैं। पूरे पृष्ठ की छपाई का आकार 16 सें.मी. x 21 सें.मी. है।

विज्ञापन की दरें	:	**(एक प्रति के लिए)**
अंतिम आवरण	:	रु.2,500/-
दूसरा/तीसरा आवरण (अंदर)	:	रु.2,000/-
पूरा पृष्ठ	:	रु.1,500/-
आधा पृष्ठ	:	रु.800/-

अखिल भारतीय विज्ञान लेख प्रतियोगिता - 1992

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद एवं राजभाषा कार्यान्वयन समिति (भा.प.अ. केंद्र) के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता हेतु प्रविष्टियां आमंत्रित हैं। लेख में किसी भी वैज्ञानिक विषय पर आधुनिक जानकारी होनी चाहिए। दो टंकित अथवा स्पष्ट लिखित प्रतियां (लगभग 3000 शब्द) **वैज्ञानिक** कार्यालय को भेजें। चित्रों को सफेद कागज पर काली रोशनाई से बनाएं और लेख के अंत में संलग्न कर दें।

पुरस्कार : प्रथम रु.1500/-, द्वितीय रु.1000/-, तृतीय रु.500/-

इसके अतिरिक्त पांच प्रोत्साहन पुरस्कार व अहिंदी भाषी प्रतियोगियों के लिए दो **विशेष पुरस्कार** - प्रत्येक रु.300/- के दिये जायेंगे। अतः अपनी मातृभाषा का स्पष्ट उल्लेख करें।

अंतिम तिथि : 31 अगस्त 1992

विशेष : पुरस्कृत रचनाएं **वैज्ञानिक** की संपत्ति होंगी। **वैज्ञानिक** से संबंधित अधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकेंगे। **वैज्ञानिक** हेतु अन्य रचनाएं भी आमंत्रित हैं। सभी प्रकाशित रचनाओं पर मानदेय दिया जाता है।

पत्राचार का पता : श्री. ज्ञानोत्तम लाल गोस्वामी, सचिव, हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद, परमाणु ईंधन प्रभाग, भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, ट्राम्बे, बम्बई - 400 085.

वैज्ञानिक

वर्षः 23 अंक 4
अक्तूबर-दिसम्बर, 1991

-व्यवस्थापन मंडल-

डॉ. शिव प्रकाश गर्ग
श्री ज्ञानोत्तम लाल गोस्वामी
श्री ललित कुमार
श्री राम निवास आर्य
श्री राम शरण शर्मा
श्री राम प्रकाश हंस

-संपादन मंडल-

डॉ. जनार्दन स्वरुप
डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल
डॉ. कैलाश चंद्रभल्ला
डॉ. दुर्गा प्रसाद पांड्ये

-शुल्क-

भारत में

	संस्थागत	व्यक्तिगत
एक वर्ष -	25रु.	15 रु.
तीन वर्ष -	70रु.	40 रु.

-विदेश में--
(समुद्री डाक द्वारा प्रेषण)

	संस्थागत	व्यक्तिगत
एक वर्ष -	45रु.	35 रु.
तीन वर्ष -	125रु.	95 रु.

अनुक्रमणिका

पृष्ठ सं.

संपादकीय 3

लेख

1. बृहस्पति ग्रह 4
-डॉ. वासुदेव प्रसाद यादव
2. हाइड्रोजन-ऊर्जा का एक वैकल्पित स्रोत 9
-इंद्रजीत कुमार
3. रोग निरोधी टीकों की खोज 13
-राजेन्द्रकुमार राय
4. भारतीय उपग्रह कार्यक्रम 18
-डॉ. आनंद कुमार शर्मा
5. नशीली दवाओं का रसायन शास्त्र और उनका प्रभाव 25
-डॉ. रमेश ज. भायाणी
6. उच्च रक्त चाप 30
-राजेन्द्रकुमार नायक
7. रबी की प्रमुख फसलों के रोग एवं उपचार 35
-बीरेन्द्रकुमार सिंह
8. कोशिका जीव विज्ञान में महत्त्वपूर्ण विकासः पैच क्लैंप विधि 39
-डॉ. के. पी. मिश्र

टिप्पणियां:

1. कैसे हो संपर्क लोकांतर वासियों से 43
-डॉ. अवधेश शर्मा
2. जल कुम्भीः अभिशाप या वरदान 46
-गणेशकुमार पाठक
3. प्रवाल श्रेणियां 48
-अखिलेश्वर तिवारी
4. भूमिसंरक्षण 50
-प्रकाश चंद्र अवस्थी

● ''वैज्ञानिक'' में लेखकों द्वारा व्यक्त विचारों से संपादन मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

● ''वैज्ञानिक'' में प्रकाशित समस्त सामग्री के सर्वाधिकार हि. वि. सा. परिषद के पास सुरक्षित है।

● ''वैज्ञानिक'' एवं हि. वि. सा. परिषद से संबंधित सभी विवादों का निर्णय बम्बई के न्यायालय में ही होगा।

कार्यालयः

''वैज्ञानिक'' हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद, सूचना प्रभाग, सेन्ट्रल काम्प्लेक्स, भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, बम्बई- 400 085.

---

5. **वायु ऊर्जा** 52
-कुमार संजीव सिंह 'राकेश'

6. **एक कोशीय प्रोटीन** 53
-डॉ. पी. डी. माथुर

7. **बढ़ता खतरा तेजाबी बरसात का** 55
-जगमोहन सिंह रौतेला

बालविज्ञानः

❑ **तारों में भी होता है जन्म और होती है मृत्यु** 57
-एम. ए. हन्फी

❑ **हमारी आँखों की बनावट** 59
-प्रमोद माथुर 'चित्रांश'

संकलनः

❑ **दूर संचार के इतिहास की विशिष्टताए** 61
-डॉ. अरविंद कुमार गुप्ता एवं श्रीमती अल्का गुप्ता

विज्ञान समाचारः

❑ **बी. ए. आर. सी. में** 67

❑ **अन्य** 67

संगोष्ठी समाचारः 68

कुछ फूल कूछ कांटे 71

अखिल भारतीय हिन्दी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1991) का परिणाम 72

संपादकीय

विज्ञान और प्रकृति

विज्ञान ने हमारे जीवन को काफी हद तक प्रभावित किया है। इसमें कोई संदेह नही है कि आज जो भी तथाकथित परिष्कृत विकास हमारे सम्मुख है उसका मौलिक स्वरूप प्रकृति में किसी न किसी रुप में उपस्थित है। 'आवश्यकता आविष्कार की जननी है' इसलिए मानव की उत्पत्ति के समय से आज तक जो भी विकास हुये हैं वे आवश्यकता से प्रेरित रहे। प्रकृति में आज भी इतने रहस्य छुपे हैं, जिनको समझ पाने के लिए हमारा बौद्धिक विकास उस ऊंचाई तक नहीं पहुंच पाया है। प्रकृति सर्वोपरि है यह कहना असंगत न होगा।

इस सृष्टि के संचालन में प्रकृति की अपनी एक अहम भूमिका है। उसके अपने नियम हैं। हालांकि कभी कभी हम कह बैठते हैं कि विज्ञान ने इतनी प्रगति कर ली है कि वैज्ञानिक सब कुछ करने में समर्थ हो गया है। वह पृथ्वी पर बैठा अन्य नक्षत्रों में अंतरिक्ष यान भेज सकता है, उस पर नियंत्रण रख सकता है, उन नक्षत्रों के बारे में जानकारी हासिल कर सकता है। यही नही कृत्रिम रूप से परखनली में शिशु को जन्म दे सकता है, जीन रोपण द्वारा जीवों में वांछित परिवर्तन ला सकता है, इत्यादि। परंतु इसे परम ज्ञान नही कहा जा सकता है क्योंकि जैसे-जैसे हम विज्ञान के नये क्षितिज पर पहुंचते है हमें हमारा ज्ञान उतना ही अपूर्ण सा लगता है।

जब कभी भी मानव अपने निहित स्वार्थ के लिए प्रकृति से खिलवाड करने का प्रयास करता है तो परिणाम स्वरुप ऐसी प्राकृतिक दुर्घटनाओं (भूकंप, बाढ़, सूखा, महामारी, अम्लवर्षा इत्यादि) का प्रकोप सामने आता है जो न केवल साधारण मानव के बल्कि प्रकृति के रहस्योद्घाटन में व्यस्त वैज्ञानिकों के आत्मविश्वास को भी हिला देता है। प्रकृति में हो रही घटनाओं को समझने के लिए वैज्ञानिक प्रयत्नशील हैं। काफी कुछ उनका समाधान ढूंडने में भी सफल हो रहे हैं। फिर भी बहुत कुछ समझ नही पा रहे हैं। इसलिए आवश्यकता है कि मानव प्रकृति के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाए न कि केवल निहित स्वार्थ के लिए वैज्ञानिक खोजों का दुरुपयोग करे। तभी हम मानव जाति को प्रकृति की उन विनाशकारी घटनाओं से बचा पाएंगे जो पल भर में सब कुछ हिला कर रख देती है।

20 अक्टुबर 1991 को उत्तरकाशी में तथा 31 मार्च 1992 को तुर्की में आये उन प्रयलकारी भूकंपों की याद अभी ताजी है जिन्हें एक विशाल जन संपत्ति को ध्वस्त करने में एक मिनट का समय भी नही लगा। साधारण जन मानस इसे केवल प्रकृति का प्रकोप समझता है और भू वैज्ञानिक इसे एक ऐसी नैसर्गिक घटना की संज्ञा देते हैं जो भू सतह में किसी विभंग (फ्रेक्चर) की दिशा में भूखण्ड के गमन के कारण होती है। साधारणतः संपूर्ण पृथ्वी पर कम तीव्रता वाली लगभग दस लाख भू गमन की घटनाएं प्रतिवर्ष होती रहती है और इनका पता केवल कुछ सुग्राही यंत्रों द्वारा संभव होता है। परंतु जब कभी भी तीव्रता एक सीमा से अधिक बढ़ जाती है तो यह विनाशकारी भूकंप के रुप में सामने आता है। कभी कभी ये भूकंप ज्वालामुखी के विस्फोट जैसी प्राकृतिक घटनाओं से भी प्रेरित होते हैं। यह देखा गया है कि अमरीका, इजिप्ट, रुस, भारत, ग्रीस इत्यादि देशों में मानव निर्मित विशाल जलाशयों, गहरे कुओं से प्रेरित भूकंप भी आये हैं। प्रकृति में जो घटनाएं प्रकृति के संतुलन को बनाये रखने के लिए होती है उन से तो मुक्ति नही पा सकते हैं परंतु समुचित वैज्ञनिक तथा संतुलित दृष्टिकोण अपनाकर उन अवस्थाओं में सुरक्षापूर्ण रहने का अवश्य प्रयास कर सकते है।

प्रस्तुत अंक वर्ष 1991 का अंतिम अंक है जिसमें मिली जुली सामग्री संजायी गयी है। परिषद द्वारा समय समय पर आयोजित संगोष्ठियां-सेमिनार में प्रस्तुत वार्ताओं को "वैज्ञानिक" के माध्यम से अधिकाधिक पाठकों तक पहुंचाने का प्रयास किया जाता है। इस अंक में 'नोबेल पुरस्कारः किसे और क्यों?' कार्यक्रम में प्रस्तुत वार्ताओं में से एक वार्ता प्रकाशित की जा रही है। कुछ संगोष्ठी समाचार भी दिये गये हैं। अपनी प्रतिक्रियाएं तथा सुझाव हमें अवश्य भेजें।

-डा. गोविंदप्रसाद कोठियाल

बृहस्पति ग्रह

डॉ. वासुदेव प्रसाद यादव
98 अशोक नगर, आगरा-282002

विज्ञान में हमारे देश के एक मात्र नोबेल पुरस्कार विजेता, प्रो. चंन्द्रशेखर वेंकटरामन् के भतीजे, प्रो. एस. चन्द्रशेखरन् ने जो अमेरिका में रहते हुए भी प्रतिवर्ष भारत आते है और स्वयं भी नोबेल पुरस्कार विजेता हैं, आकाश के ज्योतिर्पिंडों का अध्ययन करके आज से लगभग 50 वर्ष पूर्व यह बताया था कि बृहस्पति का द्रव्यमान उसके वर्तमान द्रव्यमान की अपेक्षा यदि थोड़ा अधिक होता, तो वह भी सूर्य की तरह स्वयं-प्रकाशमान एक तारा बन जाता। तारा बनने के लिए किसी ज्योतिर्पिंड के द्रव्यमान की न्यूनतम मात्रा को चन्द्रशेखर मर्यादा कहते हैं। अमेरिका द्वारा छोड़े गये अन्तरिक्ष यानों से जो बृहस्पति के पास से होकर निकले थे, इस ग्रह के बारे में अभूतपूर्व जानकारी प्राप्त हुई थी। उसके कुछ रोचक अंश प्रस्तुत हैं।

हमारे सौर मंडल में 9 ग्रह हैं; बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति, शनि, युरेनस, नेप्चून और प्लूटो। इसमें शुक्र और मंगल ग्रह तो हमारी पृथ्वी की तरह मध्यम आकार के है, जबकि बृहस्पति और शनि बहुत विशाल है, बाकी ग्रह छोटे आकार के है। इन के अतिरिक्त यहां क्षुद्र ग्रह (एस्ट्रॉएड) तथा रहस्यमय धूमकेतु के साथ कई अत्यन्त छोटे आकाशीय पिंड भी हैं जिन्हें उल्काएं कहते हैं। ये सारे ही ग्रह मध्यस्थित प्रकाश पिंड 'सूर्य' के चारों ओर अपने-अपने मार्गो (कक्षाओं) पर घूमते रहते हैं। पिछले कुछ समय से कई वैज्ञानिकों ने इस सौर मंडल में दसवें ग्रह के होने की सम्भावना प्रकट की है। अभी तो इस ग्रह को 'एक्स ग्रह' का नाम दिया गया है।

सौर मंडल के गूढ़ रहस्यों पर से पर्दा उठाने के प्रयास वैज्ञानिकों ने बहुत पहले ही प्रारम्भ कर दिये थे, लेकिन राकेटों तथा उपग्रहों एवं शक्तिशाली टेलिस्कोपों के निर्माण के पश्चात इस में विशेष तेजी आयी ।

इस शताब्दी के सातवें दशक तक मनुष्य का कार्यक्षेत्र विशेष रुप से चन्द्रमा तथा पृथ्वी के चारों ओर तक ही सीमित था, लेकिन वर्ष 1969 में चंद्रमा पर अपने कदम रखने के बाद मानव ने अपने कार्यक्षेत्र का विस्तार किया। उसने पृथ्वी की सीमा से निकलकर अन्य ग्रहों में रुचि लेना प्रारम्भ कर दिया। अपने इस प्रयास में वैज्ञानिकों को 5 अप्रैल 1972 को उस समय विशेष सफलता मिली, जब अमरीका के केनेडी अंतरिक्ष अड्डे से 570 पौंड भार का मानवरहित अंतरिक्ष यान पायनियर-10 सफलतापूर्वक बृहस्पति एवं शनि की यात्रा पर रवाना हुआ, जो दिसम्बर 1973 में 21 महीने बाद बृहस्पति के निकट पहुँचा। जब इसमें लगे यंत्रों ने पृथ्वी पर सूचना भेजनी शुरु की, तो कुछ विस्मयकारी तथ्य सामने आये। पायनियर के यंत्रों से प्रेषित सूचना से पता चला कि 10 करोड़ विकिरण कण प्रति वर्ग सेमी प्रति सेकंड यान से टकरा रहे थे।

बृहस्पति सौर मंडल का बडा ग्रह है। पायनियर-10 पहले 6 महीनों में छोटे ग्रहों (एस्टरॉयड) के कठिन और खतरनाक मार्ग से गुजरा। यह क्षेत्र २० करोड़ मील चौड़े वलय (रिंग) के समान है जिसमें चट्टानें और रेत सूर्य तथा मंगल ग्रह के गिर्द घूमती हैं। इनमें से 1776 ऐसे ग्रह हैं जिनका व्यास 2 किमी से 1,025 कि.मी. है। इसके बाद पायनियर- 10 को बृहस्पति के विकिरण पट्ट (बेल्ट) से गुजरना पड़ा। यह क्षेत्र छोटे ग्रहों के क्षेत्र से भी अधिक खतरनाक हो सकता था, लेकिन पायनियर ने इसे भी सफलता से पार कर दिया। बृहस्पति के चारों ओर 14 उपग्रह घूमते हैं। बृहस्पति से 130000 कि. मी. तक फैले इस क्षेत्र में अंतरिक्ष यान की किसी भी उपग्रह से टक्कर हो सकती थी, पर इन ग्रहों की स्थिति और-गति को ध्यान में रखते हुए ही
पायनियर के मार्ग का संचालन किया जा रहा था।

अमेरिका ने बाद में पायनियर-11 अंतरिक्ष यान भेजा। इसे बृहस्पति के दक्षिण ध्रुव की ओर से बृहस्पति की ओर भेजा गया। वह तीव्र विकिरण के क्षेत्र में पहुंचा। ग्रह के गुरुत्वाकर्षण के कारण अंतरिक्ष यान

लगभग सीधे ग्रह की ओर खींच लिया गया। इस प्रकार पायनियर 17300 कि. मी. प्रति घंटे की गति से अधिकतम विकिरण के क्षेत्र को पार कर गया।

पायनियर-11 सीधे बृहस्पति ग्रह के उत्तरी ध्रुव की ओर बढ़ा उसने बृहस्पति के ध्रुवीय क्षेत्रों के चित्र भेजे। इन क्षेत्रों के चित्र पहली बार प्राप्त हुए थे। पायनियर यान अंतरिक्ष पथ के अन्वेषक थे। उनके सफल अभियान से यह पता चला की बृहस्पति के गुरुत्वाकर्षण का उपयोग अंतरिक्ष यानों को दूसरे ग्रहों पर भेजने के लिए किया जा सकता है। इसके अलावा, इसमें लगे यंत्रों ने बृहस्पति और उस के आसपास के क्षेत्र के संबंध में विस्तृत आंकड़े प्रेषित किये। पायनियर यानों के यंत्रों ने यह सूचना भी प्रेषित की थी कि बृहस्पति से उच्च ऊर्जा से युक्त कण निकलते हैं। इससे 16 वर्ष पुराने रहस्य से परदा हटा। वैज्ञानिकों ने पृथ्वी के पास अंतरिक्ष में ऐसे कण देखें थे, पर उन्हें यह पता नहीं चल सका था कि ये कण कहां से आते हैं। पायनियर द्वारा भेजी गयी सूचना से इस बात की पुष्टि हो गयी कि बृहस्पति जितनी ऊर्जा सूर्य से लेता है उससे दुगुनी ऊर्जा किरणित करता है। यह ऊर्जा संभवतः गुरुत्वाकर्षण के कारण ग्रह के सिकुड़ने से उत्पन्न होती है।

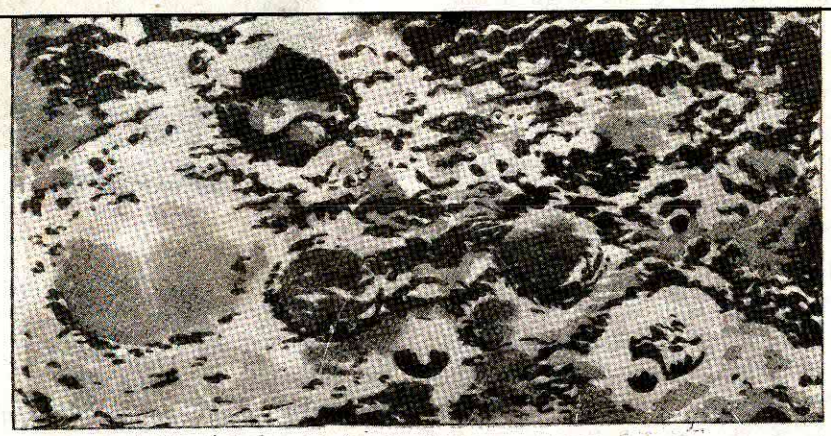

'इओ' उपग्रह का धरातल

बृहस्पति के आंकड़े

व्यास- 142,800 कि.मी. भूमध्यरेखीय
139200 कि. मी. ध्रुवीय
घनत्व- जल की अपेक्षा 1.32 गुना
भार- पृथ्वी के भार से 318 गुना
मेघाच्छादित सतह का तापमान- 15^0 से.
वर्ष की अवधि- पृथ्वी के 11.9 वर्ष के बराबर
दैनिक गति- 9 घंटे 50 मिनिट
सूर्य से औसत दूरी- 77,83,00,000 कि. मी.
अक्ष का झुकाव- 0^0
वायुमण्डल- मुख्य अवयव हाइड्रोजन
और हीलियम
ज्ञात उपग्रह- 14

सौरमण्डल की तरह बृहस्पतिका अपना 14उपग्रहों या चांदों का लघुमंड है। सूर्य के गिर्द घूमने वाले ग्रह से जितनी दूरी पर होतें हैं, उनका घनत्व उतना ही कम होता है यह सिद्धां बृहस्पतिके उपग्रहों पर भी लागू होता है। पायनि र बृहस्पतिके ऐसे चार उपग्रहों के पास से गुजरा था। इनके बारे में पहली बार इतनी विस्तृत सूचना प्राप्त हुई। उनके तल के निकट से लिए गये चित्र भी प्राप्त हुए। बृहस्पतिके सबसे बड़े उपग्रह बहुत रोचक निकले

"इओ-" जंग के रंग का गोला है। यह शायद अंदर से बहुत गरम है। इस पर सारा समय ज्वालामुखी विस्फोट होते रहते है।

"यूरोपा"- चमकीला सफेद-सुनहरा उपग्रह है। यह बिलकुल चिकना है, लेकिन दरारों से भरा है।

"गेनिमीड"- सबसे बड़ा है। इस पर गहरी सफेद धारियां फैली हुई है। लगता है कि यह बर्फ से बना है, जिस पर काली पर्पटी चढ़ी हुई है और इसे जगह-जगह किसी नुकीली चीज से तोड़ा गया है।

"कलिस्तो"- विशाल कथई उपग्रह है। इस पर कोइ स्थान ऐसा नहीं है, जहां क्रेटर न हों।

बृहस्पति के उपग्रहों में कई बहुत बड़े-बड़े भी हैं। दो तो हमारे चंद्रमा जितने बड़े है और दो बुध से छोटे नहीं है।

बृहस्पति अपनी धुरी पर बड़ी तेजी से घूमता है, इसलिए इसके बादल इसकी मध्यरेखा पर धारियों जैसे फैले हुए हैं, जैसे तेज बहती हुई नदी की सतह पर जल धाराएं। बादलों की ये धाराएं सदा एक दूसरे से आगे निकलती रहती हैं, उमड़ती घुमडती रुप बदलती रहती हैं। एक स्थान पर बृहस्पति की सफेद धारियों के बीच विचित्र धब्बा नजर आता है। लगता है कि जैसे नदी की तली से कीच उठता है, वैसे ही यहां गहराई से लाल धुआं उठता है। लाल सुर्ख घटा सफेद बादलों की धाराओं से ऊपर उठती है, उमड़ती है, कभी उज्वल हो जाती है और कभी फीकी पड़ जाती है।

हो सकता है कि वहां बादलों तले विराट ज्वालामुखी का विस्फोट होता हो, जो कभी शान्त पड़ जाता हो, और कभी फिर नयी शक्ति से जाग उठता हो।

'गेनिमीड' उपग्रह

बृहस्पति का मौसम अन्य किसी भी ग्रह के मौसम से भिन्न है। यहां यदि एक बार तूफान शुरु हो जाए तो वह सैकडों वर्षो तक चलता रहता है। पायनियर के माध्यम से पहली बार इस का निकट से परिचय मिला। ग्रह के चारों ओर कई रंगों के बादल छाये रहते है। पीले, नारंगी, सफेद रंगों के बीच-बीच में नीले, लाल, भूरे रंगों के बादलों के क्षेत्र हैं।

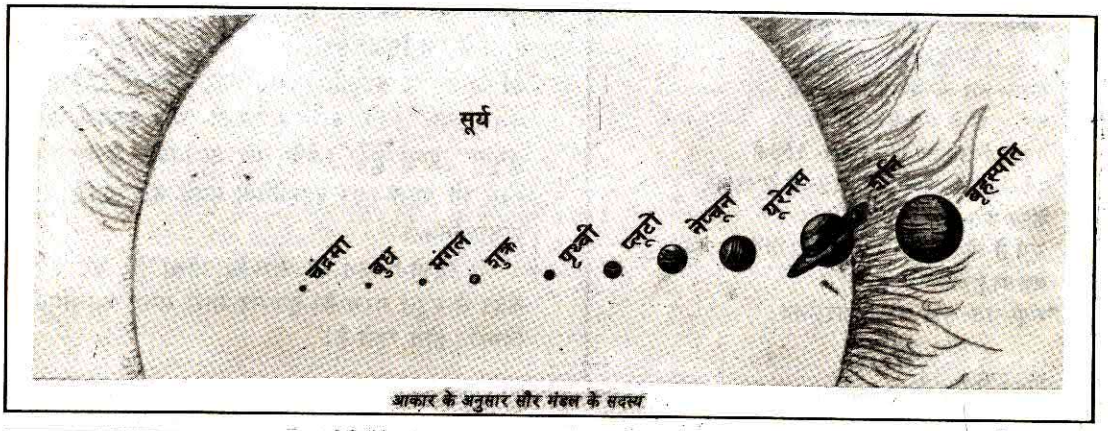

आकार के अनुसार सौर मंडल के सदस्य

पायनियर यानों से जो सूचनाएं प्राप्त हुई थी, उनका लाभ उठाते हुए और अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए वर्ष 1977 में अमेरिका द्वारा दो ''वोयेजर'' यान अंतरिक्ष में छोड़े गये जो आज भी गहन अंतरिक्ष में सुदूर ग्रहों की ओर बढ़ रहें हैं। इन दोनों यानों का पहला लक्ष्य बृहस्पति था। जिसके अत्यन्त निकट से 5 मार्च, 1979 को 'वोयेजर- 1' तथा 9 जुलाई 1979 को 'वोयेजर-2" गुज़रे और उन्होंने बृहस्पति तथा उसके पांच अतिरिक्त उपग्रहों के चित्र भेजे। इन दोनों यानों में जो कैमेरे लगे थे, उनसे पायनियर यानों के कैमेरों की तुलना में 50 से 100 गुने बेहत्तर चित्र प्राप्त किये जा सकते थे। ये दोनों यान सेटर्न-5 राकेट से छोड़े गए थे। केवल 150 सेकंड के पहले चरण में यह राकेट वायजर को 62 कि.मी. ऊपर ले गया था। इस राकेट में ईंधन के रुप में तरल आक्सीजन इस्तेमाल की गयी थी। इस राकेट में 1 सेंकंड में 15 टन ईंधन इस्तेमाल हो सकता है। दूसरे चरण में राकेट इस यान को 390 सेंकंड में 182 कि. मी. ऊपर ले गया। तीसरे चरण के ''ए-4 बी'' राकेट ने यान को कक्षा में छोड़ दिया। कुछ समय बाद उसी राकेट को फिर चलाया गया ताकि वोयेजर की गति तेज हो कर मंगल ग्रह के कक्षापथ के अनुरुप हो जाए। इसके लिए 1,950 मीटर प्रति सेंकंड की गति अपेक्षित थी।

मंगलग्रह पर उतरने वाले केप्सूल इस यान से छोडे गये और वे राकेट रोधक (रेट्रो रोकट) मोटर की सहायता से मंगलग्रह पर उतरे इन केप्सूलों में यंत्र रखे गये थे। इस से मंगल ग्रह के तल के टेलिविजन चित्र तथा मंगल ग्रह के वातावरण के भौतिक, रासायनिक और जीवि ानी आंकड़े प्राप्त हुए।

वोयेजर-1 और वोयेजर-2 बृहस्पतिके निकट क्रमशः 1979और 1980 में पहुंचे। शनि ग्रह के निकट के क्रमशः नवंबर 1980 और अगस्त 1981 को पहुंचे। वोयेजर-2 उरण (यूरेसन) के निकट 1986 में और वरुण (नेप्चून) के निकट 1989 में पहुंचा।

अब तक इन वोयेजर यानों से कई महत्वपूर्ण तथ्य प्राप्त हो चुके है। वोयेजर ने बृहस्पति की एक चुंबकीय पूंछ (मेगनैटिक टेल) का पता लगाया है जो 48.2 करोड़ कि. मी. तक अंतरिक्ष में फैली हुई है। यह चुंबकीय क्षेत्र का ही एक भाग है जो इस ग्रह के चारों

बृहस्पति का उद्वेलित वायुमंडल

बृहस्पति ग्रह

ओर फैला है। यह सूर्य से निकले कणों से युक्त है और ''सौर वायु'' के कारण यह इस ग्रह के पीछे की ओर मुड़ गयी है इससे पता चलता है कि बृहस्पति का क्षेत्र बहुत विशाल है। और सूर्य से भी बड़ा है। इस लंबी पूंछ के कारण यह आकाश में बहुत शक्तिशाली ग्रह है।

वोयेजर-1 ने बृहस्पति के उपग्रहों के चित्र भेजे इनमें से कई उपग्रहों का पहले पता नहीं था। ऐसा ही उपग्रह था 'आइओ'। वोयेजर-२ इस उपग्रह के और निकट से गुजरा और उस में रखे केमरों ने इस उपग्रह के चित्र भेजे। आइओ में आठ ज्वालामुखियों का पता चला है।

बृहस्पति के शक्तिशाली गुरुत्वाकर्षण बल ने इन दोनों को खीचकर इन्हें इनके पूर्व मार्ग से विचलित कर शनि ग्रह की ओर अग्रसर करा दिया।

वोयेजर ने जो चित्र ओर सूचनाएं भेजी उनसे पता लगता है कि बृहस्पति के चारों ओर एक हल्का-फीका छल्ला है और ग्रह के मध्य में गहरा लाल रंग का विशाल धब्बा है जिसका आकार पृथ्वी से लगभग तीन गुना बड़ा है।

सूर्य तथा अन्य दैत्याकार ग्रहों की तरह बृहस्पति का 90% भाग ब्रह्मांड के सबसे हल्के तत्व हाइड्रोजन से बना हुआ है। बृहस्पति के धरातल के निकट हाइड्रोजन के परमाणु आक्सीजन के परमाणु से मिलकर जल में बदल गये जो जमकर बर्फ बन गया है। साथ ही, हाइड्रोजन के इन परमाणुओं ने नाइट्रोजन के परमाणुओं से संयोग कर अमोनिया का निर्माण किया है। इनके अतिरिक्त और अनेक योगिक पाये हैं। बृहस्पति-धरातल के भीतर हाइड्रोजन गैस ऊंचे दबाव के कारण द्रव में बदल गयी है। किसी भी अन्य ग्रह की तुलना में बृहस्पति अपनी धुरी पर सबसे कम समय में परिक्रमा पूरी करता है।

वोयेजर-1 ने बृहस्पति के जो चित्र भेजे वे विस्मयकारी थे। उन चित्रों में बृहस्पति पर एक लाल सा स्थान है जो उस पर 100 वर्षो से विद्यमान है। यह वैसा ही है जैसा कि पृथ्वी पर तूफान के केन्द्र में भंवर होता है। जब वोयेजर-1 इसके पास से गुजरा तो बादल तेज गति से चारों ओर घूम रहे थे, वोयेजर-2 यान इस स्थान के करीब पहुंचा तो बादल वहां से छंट गये थे।

पायनियर-10 वर्ष 1976 में शनि ग्रह के पास से गुजरा। वर्ष 1971 में उरण (यूरेनस) और 1982 में प्लूटो के पथ से गुजरा। उरण ग्रह पर पहुंचने के बाद पायनियर का पृथ्वी से संपर्क टूट गया। वर्ष 1986 में यह मंडल से बाहर चला गया। ❑

क्या आप जानते हैं?

पानी हमारे शरीर का एक अत्यंत महत्वपूर्ण घटक है। खाने के बिना हम कई सप्ताह जीवित रह सकते हैं परंतु पानी के बिना औसतन 3-4 दिन से अधिक जीवित रह पाना संभव नही होता। एक स्वस्थ औसत युवक के शरीर में लगभग 65% तथा एक मध्यम उम्र की महिला के शरीर में लगभग 50% पानी रहता है। एक वयस्क को प्रतिदिन लगभग 2.5 लीटर जल की आवश्यकता होती है जिसे वह भोज्य पदार्थो के सेवन तथा जल पीकर पूरी कर सकता है।

कुछ भोज्य पदार्थो में निहित जल की मात्रा प्रतिशत में इस प्रकार है;

पदार्थ	जल की मात्रा (प्रतिशत में)
A- लैट्यूस (सलाद में प्रयुक्त किया जाता है)	97
B-खीरा	95
C-टमाटर	94
D-अंडा	75
E-मांस	70
F-मुर्गी	55
G-ब्रेड	42
H-हैम	38
I-पनीर चीज	26
J-मक्खन	9
K-चीनी	0
L-नमक	0

(गो. प्र. को.)

हाइड्रोजनः ऊर्जा का एक वैकल्पिक स्रोत

इन्द्रजीत कुमार
ग्रा. फैजापुर, पो. दामोदर पुर (बल्धा)
नालन्दा- 801305 (बिहार)

उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध्द तक लकडी ऊर्जा का एक मुख्य स्रोत था। परन्तु इस शताब्दी के उत्तरार्ध में कोयला ऊर्जा का मुख्य स्रोत हो गया। आज कुल ऊर्जा का केवल २ प्रतिशत भाग ही लकडी से और सतरह प्रतिशत भाग कोयले से मिल पाता है। इस बीच 1960 के बाद से पेट्रोलियम का ऊर्जा के लिए सबसे अधिक उपयोग होने लगा। परन्तु इस ऊर्जा स्रोतों के समाप्ति के भय से वैकल्पिक स्रोतों की खोज का सिलसिला जारी है। हाइड्रोजन ऊर्जा का एक महत्वपूर्ण स्रोत के रुप में उभर रही है। प्रस्तुत लेख में हाइड्रोजन के ऊर्जा के रुप मे प्रयुक्त किये जाने तथा आर्थिक रुप से व्यवहार्य साधनों द्वारा इसे प्राप्त किए जाने से संबंधित जानकारी दी गयी है।

आज हम तेल-वाहन पर सवार होकर जीव-वाहनों को काफी पीछे छोड़ते हुए फुर्र से आगे निकल जाते हैं। परन्तु एक दिन ऐसा आने वाला है जब तेल वाहन निष्क्रिय पड़े रहेंगे और सड़कों पर जीव-वाहनों का साम्राज्य होगा। चौंकिये मत! ऐसा हो सकता है यदि सही वक्त पर पेट्रोलियम का विकल्प नहीं ढूंढा गया। इसका एक विकल्प हो सकता है- हाइड्रोजन।

हाइड्रोजन पूरे विश्व में सबसे अधिक मात्रा में पाया जाने वाला तत्व है। यह ऊर्जा का एक अद्‌भुत स्रोत है। इसके जलने से प्रचुर मात्रा में ऊर्जा मुक्त होती है। हाइड्रोजन की ऊर्जा रुपान्तर दक्षता पेट्रोलियम की तुलना में अधिक होती है। अन्य इंधनों की तुलना में इसका ऊष्मीय मान भी अधिक होता है। किसी ईंधन के एक ग्राम को जलने से जितनी ऊर्जा मुक्त होती है, उसे उस ईंधन का अष्मीय मान कहा जाता है। कुछ ईंधन के ऊष्मीय मान तालिका में दिये जा रहे है:

साधारण तापक्रम एवं दाब पर हाइड्रोजन गैस के रुप में रहती है। परन्तु - 259^0 सें. तक ठण्डा करने पर यह द्रव में परिणत हो जाती है। हाइड्रोजन को आसानी के साथ जमा किया जा सकता है और आवश्यकता नुसार इसका प्रयोग कर ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है जबकि विद्युत को संग्रहीत नहीं किया जा सकता है। संयुक्त राज्य अमेरिका मे अन्तरिक्ष कार्यक्रम के लिए निर्वात ढंग से तापरुद्ध अत्यंत ठण्डे टैंक में द्रव हाइड्रोजन को विपुल मात्रा में जमा किया जाता है। इस प्रकार के एक टैंक की धारिता लगभग 3400 घनमीटर होती है। द्रव हाइड्रोजन को एक स्थान से दूसरे स्थान तक टैंकर की सहायता से ले जाया सकता है। भूमिगत पाइपलाइन के द्वारा भी इसकी ढुलाई की जा सकती है। अमेरिका तथा दक्षिण अफ्रीका में 80 किलोमीटर लम्बी तथा यूरोप में 200 किलोमीटर लम्बी द्रव हाइड्रोजन-पाइपलाईनें कई वर्षों से कार्यरत हैं। छोटे पैमाने पर निकेल तथा लैन्थनम की मिश्र धातु के बर्तन में हाइड्रोजन का संग्रह किया जा सकता है। कमरे के तापक्रम तथा 2.5 वायुमण्डलीय दाब पर एक आण्विक (मोल) $LaNi_5$ आण्विक हाइड्रोजन का शोषण कर सकता है। इस प्रकार संग्रहीत हाइड्रोजन का घनत्व द्रव

तालिका

ईंधन	बेंजीन	हाइड्रोजन	कार्बन	मिथेन	इथाइल अल्कोहल	इथेन	एथिलिन	ऐसीटिलीन
ऊष्मीयमान (कि.जूल/ग्राम)	42.8	121.3	32.8	55.6	30.0	52.0	50.3	50.0

हाइड्रोजन की तुलना में दुगुना होता है। संग्रहीत हाइड्रोजन के लीक होने तथा विस्फोट करने का खतरा रहता है। परन्तु ऐसी दुर्घटना अभी तक नहीं हुई है। इस प्रकार का खतरा तो पेट्रोलियम तथा प्राकृतिक गैस के साथ भी रहता है।

स्वचालित वाहनों में ईंधन के रुप में द्रव हाइड्रोजन का प्रयोग सुविधापूर्वक किया जा सकता है। इसके पीछे दो कारण हैः-

(क) हाइड्रोजन का ऊष्मीय मान अधिक होता है।

(ख) हाइड्रोजन के जलने से जल का निर्माण होता है। यानी किसी प्रकार का प्रदूषण पैदा नहीं होता। दृष्टव्य है कि पेट्रोल के जलने से प्रदूषण पैदा करने वाली CO, CO_2, NO_x, SO_2, हाइड्रोजन, लेड के योगिक आदि मुक्त होते हैं। कई परम्परागत अन्तर्दहन पेट्रोल-इंजन को इस प्रकार सुधारा जा चुका है कि वे हाइड्रोजन से चल सकें। अपने देश में भी बनारस हिन्दु विश्वविद्यालय में इस संबंध में शोधकार्य चल रहा है।

ईंधन-सेल में हाइड्रोजन गैस का इस्तेमाल कर विद्युत-ऊर्जा का उत्पादन किया जा सकता है। ईंधन-सेल वस्तुतः विद्युत रासायनिक सेल हैं जिसमें आसानी से उपलब्ध ईंधन जैसे-हाइड्रोजन, मिथेन आदि का आक्सीकरण उचित एनोड में कर उनकी रासायनिक ऊर्जा को विद्युत ऊर्जा में परिवर्तित किया जाता है। यहाँ पर ध्यान देने की बात है कि बैटरी में विद्युत-ऊर्जा संग्रहीत होती है जबकि ईंधन-सेल में रासायनिक अभिक्रियाओं से प्राप्त रासायनिक ऊर्जा को सीधे विद्युत-ऊर्जा में परिणत किया जाता है। हाइड्रोजन-ईंधन-सेल को चित्र- 1 में दिखाया गया है। कैथोड पर जल में ऑक्सीजन को घुलाकर OH^- आयन बनाया जाता है। एनोड पर हाइड्रोजन घुलकर हाइड्रोनियम आयन देता है।

$1/2\ O_2 + H_2O + 2e^- \longrightarrow 2OH^-$ (कैथोड-प्रक्रिया)

$2H_2O + H_2 \longrightarrow 2H_3O^+ + 2e^-$ (एनोड-प्रक्रिया)

पूरी अभिक्रिया

$1/2\ O_2 + H_2 \text{-----} > H_2O$

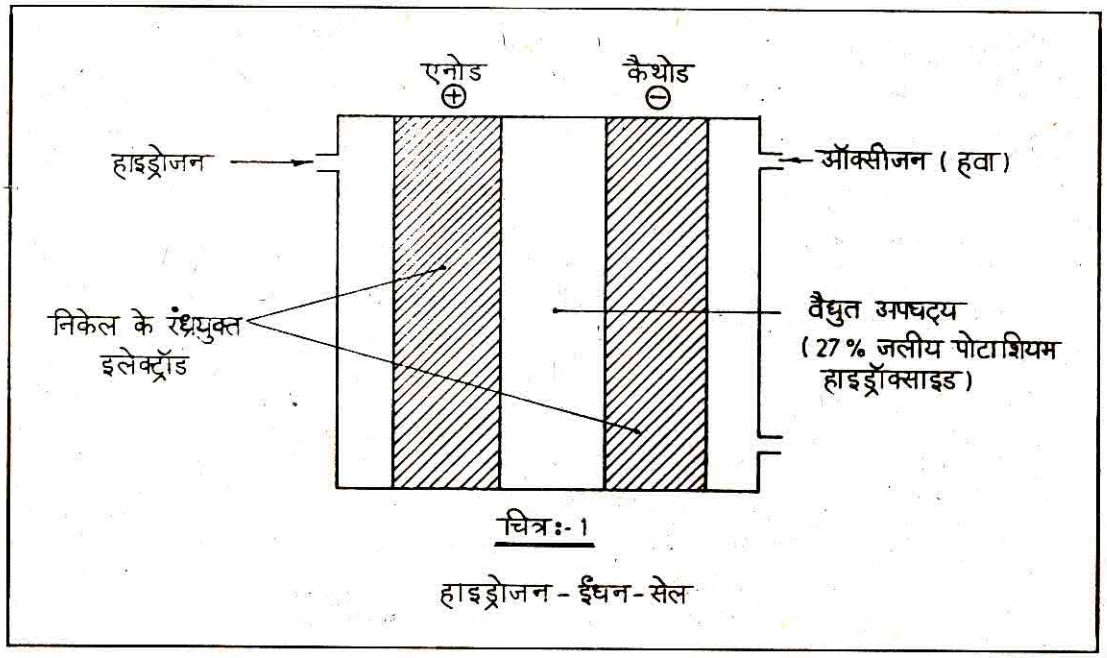

चित्रः- 1

हाइड्रोजन - ईंधन - सेल

इस प्रकार के एक सेल से 1.15 वोल्ट का विभावान्तर प्राप्त होता है। इस सेल से एक लम्बे समय तक दिष्ट धारा प्राप्त की जा सकती है। इस प्रकार के सेल से प्राप्त विद्युत-ऊर्जा अपेक्षाकृत सस्ती होती है और इसके रखरखाव पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता नहीं होती है। इस सेल की दक्षता निकेल-इलेक्ट्रोड की सतह पर निर्भर करती है। इलेक्ट्रोड की सतह साम्यवस्था प्राप्त करने के लिए उत्प्रेरक का काम करती है। इलेक्ट्रोड को अशुद्धियों से मुक्त तथा रंध्रयुक्त होना चाहिए। हाइड्रोजन-ईंधन-सेल की दक्षता 70% होती है। परन्तु उच्च दाब पर इसकी दक्षता को 85% तक बढ़ायी जा सकती है।

अब सवाल उठता है कि हाइड्रोजन को किस प्रकार सस्ते तौर पर प्राप्त किया जाय। पृथ्वी पर जल का अथाह भण्डार है। यदि पानी से हाइड्रोजन गैस प्राप्त करने के लिए कोइ सस्ती विधि ढूंढ ली जाय तो हमें ऊर्जा का एक अक्षय स्रोत प्राप्त हो जाएगा, क्योंकि हाइड्रोजन के जलने से पुनः पानी का ही निर्माण होता है। जल से हाइड्रोजन प्राप्त करने के लिए जल के अणु H-O-H में ऑक्सीजन एवं हाइड्रोजन को जोडने वाले (O-H) बंधनों को तोडने की आवश्यकता होती है। ऐसा विद्युत-ऊर्जा (वैद्युत अपघटन), ताप ऊर्जा (तापीय अपघटन) या प्रकाश-ऊर्जा (प्रकाशीय अपघटन) के द्वारा किया जा सकता है।

क) वैद्युत अपघटनः फिलहाल अम्लीय या क्षारीय जल के वैद्युत अपघटन के द्वारा हाइड्रोजन गैस प्राप्त किया जाता है। मान लिया कि जल में अल्प मात्रा में गंधकाम्ल मिलाया गया है। इस घोल में H_3O^+, SO_4 तथा OH^-(जल के अल्प आयनीकरण के कारण मुक्त आयन उपस्थित होंगे। हाइड्रोनियम आयन कैथोड पर अनावेशित होकर हाइड्रोजन गैस देते हैं।

$2H_3O^+ + 2e^- \longrightarrow 2H_2O + H_2$ (कैथोड-प्रक्रिया)

हाइड्रोक्सिल आयन एनोड पर अनावेशित होकर ऑक्सीजन गैस देती है-

$2OH^- \cdots\cdots\cdots\cdots > H_2O + O + 2e^-$ (एनोड - प्रक्रिया)

$O + O \longrightarrow O_2$

हालाँकि घोल में सल्फेट आयन काफी मात्रा में विद्यमान रहते हैं, लेकिन वे एनोड पर विआयनीकृत नहीं होते हैं; क्योंकि उनका वियानीकर विभव हाइड्रोक्सि आयन की तुलना में काफी अधिक होता है। अब मान लिया कि जल में अल्पमात्रा में पोटाशियम हाइड्रोक्सा ड मिलाया गया है। इस घोल में K^+, OH^- तथा H_3O^+ (जल के अल्प आयनीकर के कारण मुक्त) आयन उपस्थित रहेंगे। हाइड्रोनिय आयन कैथोड पर विआनीकृ होकर हाइड्रोजन गैस देते हैं जबकि एनोड पर हाइड्रोक्सि आयन विआयनीकृत होकर ऑक्सीजन गैस देते हैं। इस स्थिति में भी K^+ आयन कैथोड पर विआयनीकृत नहीं होते हैं; क्योंकि इनका विआयनीकरण विभव H_3O^+ आयन की तुलना में काफी अधिक होता है। अम्लीय या क्षारीय जल के वैद्युत अपघटन से हाइड्रोजन गैस प्राप्त करनी थोड़ी मँहगी पड़ती है।

(ख) तापीय अपघटनः- इस संबंध में मुख्य समस्या यह है कि जल के अणु पर उचित मात्रा में मुक्त ऊर्जा किस प्रकार स्थानान्तरित किया जाय कि वह विखण्डित हो जाय। जल के तापीय अपघटन की निम्नलिखित विधियाँ हैं:

(i) श्वेत तप्त कोक पर अति तप्त जलवाष्प प्रवाहित करने से कार्बन मोनोक्साइड के साथ - साथ हाइड्रोजन गैस प्राप्त होती है।

$$C + H_2O \xrightarrow[\text{जल-गैस}]{440^\circ\text{-}600^\circ\ \text{सें.}} CO + H_2$$

इस प्रक्रिया में प्राप्त हाइड्रोजन गैस का दाब जलवाष्प के दाब के वर्गमूल का समानुपाती होता है। यानी जलवाष्प का दाब जितना अधिक होगा, हाइड्रोजन गैस उतनी ही ज्यादा बनेगी।

(ii) लाल तप्त लोहे पर अति तप्त जलवाष्प प्रवाहित करने से भी हाइड्रोजन गैस प्राप्त होती है।

$3Fe + 4H_20 \text{----->} Fe_3O_4 + 4H_2$

इस प्रक्रिया में प्राप्त हाइड्रोजन गैस का दाब जलवाष्प के दाब का सीधा समानुपाती होता है।

(iii) कार्बन मोनोक्साइड एवं जलवाष्प के मिश्रण को 820° सें. तक तप्त निकेल - क्रोमियम उत्प्रेरक के ऊपर प्रवाहित करने पर हाइड्रोजन गैस प्राप्त होती है।

$$CO + H_20 \xrightarrow[280\text{ सें.}]{\text{Ni-Cr}} CO_2 + H_2$$

(iv) पिछले कुछ वर्षो में कम्पयूटर की सहायता से जल - विखण्डन के करीब 1000 ऊष्मारासायनिक चक्रों का पता लगाया गया है। इसमें से दो प्रमुख ऊष्मारासायनिक चक्रों को नीचे दिखाया गया है:-

$$CaBr_2 + H_2 \xrightarrow{750^\circ\text{ सें.}} CaO + 2HBr$$

$$Hg + 2HBr \xrightarrow{100^\circ\text{ सें.}} HgBr_2$$

$$HgBr_2 + CaO \xrightarrow{25^\circ\text{ सें.}} HgO + CaBr_2$$

$$HgO \xrightarrow{500^\circ\text{ सें.}} Hg + 1/2O_2$$

$$3FeC_2 + 4H^2O \xrightarrow{500^\circ\text{ सें.}} Fe^3O_4 + 6HCl + H_2$$

$$Fe_3O_4 + 3/2Cl_2 + 6HCl \xrightarrow{100^\circ\text{ सें.}} 3FeCl_3 + 3H_2O + 1/2\,O_2$$

$$3FeCl_3 \xrightarrow{300^\circ\text{ सें.}} 3FeCl_2 + 3/2Cl_2$$

(ग) प्रकाशीय अपघटनः- प्रकाश ऊर्जा को प्राकृतिक ढंग से रासायनिक ऊर्जा में परिवर्तित करने की सबसे बड़ी प्रक्रिया है- जैविक निकाय में प्रकाश संश्लेषण। इस प्रक्रिया में जल के अणु प्रकाश ऊर्जा द्वारा अपघटित होकर अन्तिम उत्पाद कार्बनिक यौगिक एवं ऑक्सीजन देते हैं। इस प्रक्रिया के मार्ग को उचित दिशा में मोड़कर जल से ऑक्सीजन एवं हाइड्रोजन प्राप्त करने की संभावना प्रबलतर है। हरित शैवाल एवं नीलहरित शैवाल में हाइड्रोजीनेज नामक एन्जाइम पाया जाता है जो जल को अपघटित कर सीधे ऑक्सीजन एवं हाइड्रोजन का उत्पादन करता है। एनाबेना फ्लोसेक्यूईल एनाबेना सिलिंड्रिका, मैस्टीगोक्लेडस लेमिनोसेस, लिंग्बिया, प्लेक्टोनीमा, नॉस्टकल टॉलीपौथ्रिक्स, स्काईटोनीमा, क्रोकोकस एवं ग्लाईयोंथिंकी नामक नीलहरित शैवाल तथा सेंडेसमस आब्लिकस, कर्चनेरिला ल्यूनेरिस, सेलेनेस्ट्रम, सिलैस्ट्रम प्राबोसिडियम, क्लेमायडोमोनस, एन्किट्रोडेसमस एवं क्लोरेला वूलगेरिस नामक हरित शैवाल हाइड्रोजन के प्रकाशीय उत्पादन के लिए जाने जाते हैं।

इनके अतिरिक्त कुछ जीवाणुओं के द्वारा भी हाइड्रोजन का प्रकाशीय उत्पादन किया जा सकता है। जर्मन अनुसंधान सेवा की अद्यतन सूचना के अनुसार बर्लिन प्रावैधिकी विश्वविद्यालय के प्रो. रीचेनगरी एवं उनके सहयोगियों ने आज से करीब दस वर्ष पहले नीलरक्त (पर्पल) जीवाणु का उपयोग कर जीव-पिण्ड (बायोमास) से हाइड्रोजन गैस प्राप्त की थी। परन्तु, अब वे नीलरक्त जीवाणु एवं शैवाल का उपयोग कर जीव-पिण्ड से हाइड्रोजन गैस प्राप्त करने में सफल हो गये हैं।

नीलरक्त जीवाणु पानी में पाये जाने वाले गंधकरहित प्रकाश - संश्लेषिक जीवाणु हैं। ये जीवाणु सूर्य के प्रकाश के लम्बे तरंग दैर्ध्य वाले लाल रंग का इस्तेमाल करते हैं। पानी की ऊपरी सतह पर स्थित हरी पत्तियों एवं शैवाल को प्रकाश के उपर्युक्त भाग की आवश्यकता नहीं पड़ती है। सामान्य प्रकाश-संश्लेषण की लीक से हटकर ये जीवाणु जल-अणु को हाइड्रोजन एवं ऑक्सीजन में विखण्डित नहीं करते हैं बल्कि ये कार्बोहाइड्रेड के संश्लेषण में कार्बनिक यौगिकों का उपयोग हाइड्रोजन - दाता के रूप में करते हैं। बाद में कार्बोहाइड्रेट कार्बन-डॉयक्साइड एवं हाइड्रोजन में विखण्डित हो जाते हैं। इस प्रक्रिया में प्राकृतिक वातावरण में हाइड्रोजन एवं नाइट्रोजन साथ मिलकर नाइट्रोजीनेज एन्जाइम की उपस्थिति में अमोनिया बनाते हैं जो अन्ततः प्रोटीन-संश्लेषण में काम आता है।

नाइट्रोजन की अनुपस्थित में भी हाइड्रोजन बन सकती

(शेष पृष्ठ 24 पर)

रोग निरोधी टीकों की खोज

राजेन्द्रकुमार राय
द्वारा, डा. एस. एन. राय
माइकोलोजी विभाग,
आई.ए.आर.आई, नयी दिल्ली-110012

अनेक प्रकार के जानलेवा रोगों के निरोधी टीके बनाये जाचुके हैं, फिर भी वे हमारे देश के कोने - कोने में उपलब्ध नहीं हो पाते हैं जिसके कारण बचायी जा सकने वाली जाने चली जाती हैं। कई जानलेवा रोगों के निरोधक टीकों पर अनुसंधान कार्य पूरा हो चुका है, परंतु वे प्रयोगशाला से बाहर नहीं निकल पाये हैं। कई निरोधक टीकों पर अनुसंधान कार्य चल रहा है। टीकों के आविष्कार के इतिहास और कुछ घातक बीमारियों के निरोध हेतु उनके विकास का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के एक अध्ययन के अनुसार प्रतिवर्ष 30 लाख बच्चों की मौत उन रोगों से हो जाती है, जिनके टीके विकसित तो हो चुके हैं, लेकिन हर गह आसानी से समय पर उपलब्ध नहीं हो पाते। ऐसी स्थिति से निपटने के लिए विश्व स्वास्थ्य संगठन ने वर्ष २००० तक सब के लिए स्वास्थ्य आंदोलन चलाया है। जिसका उद्देश्य विश्व के कोने - कोने तक चिकित्सा की सुविधा उपलब्ध करना और रोग-निरोधी उपायों की खोज को प्रोत्साहित करना है।

प्रकृति ने मानव शरीर तथा अन्य जीवों के शरीर में रोगों से बचाव के लिए प्रतिरक्षा व्यवस्था की है। लेकिन एक आश्चर्यजनक बात यह है कि विषाणु (वाइरस) प्रतिरक्षा व्यवस्था को अपने ही शरीर पर आक्रमण करने के लिए प्रेरित करता है। शरीर की प्रतिरक्षा व्यवस्था का गड़बड़ाना स्व-उत्पन्न रोग, जैसे इंसुलिन के ऊपर आरक्षित मधुमेह तथा रिक्लरोमा के लिए विषाणु उत्तरदायी है। इन सब अव्यवस्थाओं से शरीर की प्रतिरक्षा व्यवस्था भ्रमित हो जाती हैं और शरीर के तंतुओं तथा अजनबी भेदियों पर आक्रमण रती हैं। कुछ रोगों के विषाणु या परजीवी इस प्रतिरक्षण व्यवस्था को शिथिल कर शरीर में प्रविष्ट हो जाने की क्षमता रखते हैं।

शरीर के ही अंदर तैयार होने वाले रसायन ''इंटरफेरान'' की मदद से हमारा शरीर रोगाणुओं के आक्रमण से बचने की क्षमता रखता है, किन्तु कई कारणों से रोग प्रतिरोध की यह क्षमता प्रभावित हो जाती है।

वर्ष 1957 में संक्रामक रोगों की चिकित्सा के क्षेत्र में एक क्रांतिकारी परिवर्तन उस समय आया जब ''नेशनल इंस्टीटयूट फॉर मेडिकल रिसर्च, लंदन के दो वैज्ञानिक, पी. आइसक्स एंव सीन लिडमेन का एक शोधपत्र प्रकाशित हुआ। इन दोनों वैज्ञानिकों ने अपने शोधपत्र में लिखा था कि विषाणु संक्रमण के समय जन्तु कोशिकाओं में एक विशेष प्रकार के पदार्थ का स्राव होने लगता है और यह विशेष पदार्थ दूसरी कोशिकाओं के सम्पर्क में आने पर उन्हें संक्रमण प्रतिरोधक बना देता है। चूँकि इस पदार्थ से कोशिकाओं के अन्दर की संक्रामक क्रियाओं में विघ्न पड़ता है, अतः इसे इंटरफेरान (इंटरफियर करने वाला) का नाम दिया गया। टोकियो स्थित संक्रामक रोग के विशेषज्ञ वाई-कोजिमा और आर. वाई. नागानी ने भी इंटरफरान की विषाणुरोधी सक्रियता की पुष्टि की है। कोजीमा एवं नागानो का कहना है कि इंटरफेरान की सक्रियता किसी विशेष विषाणुओं के प्रति न होकर प्रायः अधिकांश विषाणुओं के प्रति है।

विषाणु संक्रमण के समय जब अनुवांशिक पदार्थ, डी.एन.ए. (डी. ओक्सी राइबोन्यूक्लाइक एसिड) कोशिकाओं के भीतर पहुंचता है तो इस समय वाह्य पदार्थ की उपस्थिति कोशिका को इंटरफेरान के संश्लेषण तथा स्रवण के लिए प्ररित करता है। फिर यह स्रावित इंटरफेरान अन्य कोशिकाओं की सतह पर उपस्थित एक विशिष्ट रिसेप्टर (ग्राही) के साथ एक हल्के बंध के साथ बंध कर उनमें अनेक रासायनिक क्रियाओं को आरम्भ

करा देता है। इन क्रियाओं का परिणाम यह होता है कि इन कोशिकाओं में प्रोटीन संश्लेषण होने लगता है। कोशिकाओं को संक्रमण के प्रभावों से प्रोटीन सुरक्षित रखती हैं।

चेचक: मानव जाति बहुत लम्बे समय तक विषाणुओं से परिचित न होकर भी उनके द्वारा पहुंचायी गयी हानियों से परिचित थी। तीन हजार वर्ष से भी पूर्व से उत्पन्न रोग (चेचक) का पहला सुरक्षित टीका (वैक्सीन) लगाने की दवा 18वीं शताब्दी (1798) में ब्रिटेन के एक डॉक्टर, ए. जैनर द्वारा खोजी गयी। जैनर ने विषाणु संक्रमण से बचाव के लिए ''ग्वालीन'' के गो-चेचक (चेचक का लघु रूप) के दानों से द्रव्य पदार्थ लेकर एक लड़के को टीका लगाया और सिद्ध किया कि उस लड़के ने चेचक के विरूद्ध असंक्राम्यता प्राप्त कर ली थी। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध, ''जीवाणु विज्ञान का स्वर्णयुग'' के अस्तित्व पर संदेह हुआ जो संक्रमण फैलाने वाले उन जीवाणुओं से भी सूक्ष्म हैं जिन्हें माइक्रोस्कोप से देखा जा सकता है।

फ्लू, चेचक, पोलिया, खसरा तथा कई भयानक एवं साधारण बीमारियों, जैसे जुकाम, दाद, मानो-कलासिस जैसे रोगों के संक्रमण से बचाव के लिए चिकित्सा वैज्ञानिकों ने समय-समय पर रोग-निरोधक टीके (वैक्सीन) विकसित किये है। ये वैक्सीन रोग विशेष के जीवाणुओं से ही निर्मित किये जाते हैं। जिन्हें शरीर के अंदर अन्तःक्षेपित (इंजेक्ट) कर दिया जाता है। शरीर में ये रोग संक्रमण से बचाव के लिए प्रतिपिण्डों (एंटीबाडी) का निर्माण करते हैं जो शरीर में रोग विषाणुओं के समय प्रवेश करते ही उन्हें मार भागते हैं।

जैनर के टीके से लेकर अब तक अनेक प्राकृतिक एन्टीजन टीके विकसित किये जा चुके हैं ये टीके प्राकृतिक रूप से उपलब्ध जैव स्रोतों से ही तैयार किये जाते है। जैसे ''एंटीहेपेटाइटिस-बी'' टीके के स्रोत के रूप में मानव रक्त इस्तेमाल होता है।

एड्स: विश्व में एड्स की बढ़ती दहशत ने भी प्राकृतिक एंटीजन टीकों का विकल्प ढूंढने पर मजबूर किया है। पूरे विश्व में तहलका मचा देने वाले इस रोग के विषाणुओं का विशेष गुण एक यह है कि वह रास्ते में आने वाले कई रक्त कोशिकाओं की पूरी तरह उपेक्षा करके बड़ी तेजी के साथ प्रतिरक्षा व्यवस्था से बचते हुए (टी) कोशिकाओं के साथ बस जाते है। यहीं विषाणुओं को एक अभिग्राहक भी मिल जाता है। इस अभिग्राहक का प्रीटीन आवरण पूरी तरह उनसे मेल खाता है। शरीर की प्रतिरक्षा व्यवस्था महत्त्वपूर्ण (टी) कोशिकाओं की आवश्यक संख्या से बंचित हो जाने के कारण संक्रमण से लड़ने में असमर्थ हो जाती है। इसके परिणामस्वरूप बहुत से अवसरवादी रोग, जिनसे सामान्यतः स्वास्थ्य प्रतिरक्षा व्यवस्था पहले बचाव करती थी, कमजोर शरीर पर आक्रमण कर देते हैं।

चूँकि एड्स के विषाणु रक्त के आदान-प्रदान के साथ संचरित हो सकते हैं, इसलिए हेपेटाइटिस बी के टीके बनाने के लिए प्रयुक्त किये जा रहे रक्त में अगर एड्स या अन्य रोग के विषाणु हो, तो उनसे निर्मित टीके मानव के लिए घातक हो सकते हैं। इस कारण विश्व के कई देशों ने प्राकृतिक एंटीजन टीकों के उपयोगे पर सीमित प्रतिबंध लगा रखा है।

कृत्रिम रूप से तैयार एंटीजन टीके ''सिंथेटिक वैक्सीन'' कहलाते है। जैव प्रौद्योगिकी के माध्यम से वायरसों या परजीवी बैक्टीरियाई प्रोटीन की अति सूक्ष्म संरचनाओं को समझ पाना आसान हो गया है, इसलिए अब प्रोटीन की इन संरचनाओं का या मूलकों का पता लगाया जा सकता है जो प्रतिरक्षण हेतु प्रतिपिंडों का निर्माण कर सकते हैं। लगभग चालीस वर्ष पहले खोजे गये फ्रिउड्स कंप्लीट एडजुवेंट (एफ.सी.ए.) को संश्लेषित वैक्सीनों के साथ देने के लिए काफी उपयुक्त समझा जा रहा है। इस एडयुवेंट के एक मूलक ''म्यूरामिल डाई पेप्टाइड'' (एम.डी.पी.) को वैज्ञानिक संश्लेषित वैक्सीनो के साथ देने के लिए सबसे उपयुक्त मान रहे हैं। सैद्धान्तिक रूप से अब तक पांव एवं मुंह के रोग, हेपेटाइटिस बी वायरस, प्लाजमोडियम स्पोरोजाइट, स्ट्रेटोकाक्स एम प्रोटीन आदि की संश्लेषित वैक्सीने विकसित कर ली गई है तथा उन्हें बनाने से संबंधित प्रयोगात्मक परीक्षण भी किये जा रहे हैं।

मलेरिया: विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार, दुनिया भर में प्रति वर्ष लगभग 25 करोड़ मलेरिया के

विश्व स्वास्थ्य संगठन और यूनिसेफ की भूमिका

वर्ष 1974 में विश्व स्वास्थ्य संगठन ने विस्तृत कार्यक्रम आरंभ किया जिसके अंतर्गत डिप्थीरिया, टेटेनस, कुकर खांसी, टी. बी., खसरा और पीलिया आदि बिमारियों के विरुद्ध टीका अभियान प्रारंभ किया गया। विभिन्न क्षेत्रों में कुछ अन्य विशिष्ट टीकों का भी उपयोग किया गया, जैसे पश्चिमी अफ्रीका में पीला ज्वर और दक्षिण पूर्व एशिया में हेपेटाइटिस बी के विरुद्ध।

शुरु में कुछ ही लोग चेचक, टेटेनस या पीलिया को तीसरी दुनिया में गंभीर समस्या मानते थे, लेकिन जब कार्यक्रम आरम्भ किया गया तब यह पाया गया कि बीमारियां मृत्यु और अपंगता का एक बड़ा कारण है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के आकलन के अनुसार छ प्रमुख बीमारियां हैं जिसके विरुद्ध टीका लगाने का कार्यक्रम बनाया गया है। तीसरी दुनियामें लगभग 30 लाख बच्चों को हर साल ये मृत्यु के मुंह में धकेल देती है और इतने ही बच्चों को विकलांग बना देती है।

वर्ष 1978 बच्चों के स्वास्थ्य की जिम्मेदारी लेने वाले दो संगठन, विश्व स्वास्थ्य संगठन और यूनीसेफ ने घोषणा की कि प्रायमरी स्वास्थ्य देखभाल से ही जीवन स्तर को सुधारा जा सकता है। सोवियत रुस के एक शहर ''अल्मा-अटा'' में इन संगठनों ने अपने लक्ष्य की घोषणा की। ''वर्ष 2,000 तक सबके लिए स्वास्थ्य'' इस घोषणा का तात्पर्य है कि 1990 तक सब बच्चों को निम्नतम स्वास्थ्य आवश्यकताओं को मुहैया कराया जाना।

फरवरी 1988 तक दुनिया के लगभग आधे बच्चों को टीका लगाने का कार्य पूरा हो चुका है। इसका तात्पर्य है कि लगभग 70 बच्चों में कम से कम टीका लगाने का कार्य शुरु हो चुका है। भारत में और विश्व भर में इसी प्रकार का प्रयास किया जाना चाहिए ताकि उचित प्रशिक्षण एवं संरक्षण के अभाव में संक्रामक रोगों से ग्रस्त होने वाले बच्चों की संख्या कम की जा सकें, तभी विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा 2000 तक सबके लिए स्वास्थ्य का लक्ष्य पूरा हो सकेगा।

वर्ष 1982 में विस्तृत प्रतिरक्षण कार्यक्रम के बारें में विश्व स्वास्थ्य एसेम्बली में बोलते हुए हापडान मेहलर ने कहा की यद्यपि यह प्रोग्राम काफी अच्छा चल रहा है, खासकर स्टाफ ट्रेनिंग और टीकों के वितरण के मामले में फिर भी यह काफी नहीं है। उन्होंने आगे कहा ''बिना गतिशीलता के विस्तृत प्रशिक्षण प्रोग्राम 1990 तक विश्व के सभी बच्चों तक नहीं पहुंच पाएगा।

हाल में नियुक्त यूनिसेफ के महानिदेशक, जेम्स ग्रान्ट ने भी विस्तृत प्रशिक्षण प्रोग्राम के लिए साधन जुटाने का भी वादा किया है। यूनिसेफ ने एक वार्षिक पुस्तक ''द स्टेट आफ द वर्ल्ड चिल्ड्रन'' का प्रकाशन शुरु किया है जिससे विश्व के शिशुओं की मृत्युदर कम करने की दिशा में कार्य आगे बढ़े।

वर्ष 1984 में यूनिसेफ विश्व स्वास्थ्य संगठन, विश्व बैंक और रॉक फेलर फाउडेशन ने इटली के एक शहर ''बेल्लजिओं'' में एक सभा का आयोजन किया। सभी में तय किया कि देश प्रतिरक्षण कार्यक्रम को तीव्रता से चलाना चाहते है, उन्हें वित्तीय सहायता मुहैया करायी जाए।

इस सभा के बाद बोलम्बिया ने अपने यहां प्रतिरक्षण दिवसों का आयोजन किया, इस कार्यक्रम में समाज वर्ग, राष्ट्रपति से लेकर निचले स्तर तक के व्यक्तिओ ने हिस्सा लिया। एल-सल्वाडोर, बरकीना फासो और तुर्की ने भी यूनिसेफ के सहयोग से प्रतिरक्षण कार्यक्रम को कार्यान्वित किया।

यूनिसेफ का कार्य करने का तरीका विश्व स्वास्थ्य संगठन से भिन्न है। विश्व स्वास्थ्य संगठन चुपचाप कार्य करता है जबकि यूनिसेफ जोरदार अभियान और प्रचार का सहारा लेता है। यूनिसेफ ने ''ओरल रिहाइड्रेशन साल्ट्स'' को प्रोत्साहन दिया है। इस नमक का प्रभाव शिशुओं में अतिसार रोग से उत्पन्न होने वाले दुष्प्रभावों को रोकने में सहायक है, लेकिन विश्व स्वास्थ्य संगठन ने इस नये कार्यक्रम का विरोध किया। उसका मानना है कि तत्कालीन चलाये जा रहे कार्यक्रमों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

टीकाकरणः एक जन स्वास्थ्य क्रांति

सत्तर के दशक के मध्य वर्षों में हर साल लगभग 50 लाख बच्चे खसरा, टेटेनस, काली खांसी, गलाघोटू, तपेदिक और पोलियो से मर रहे थे। लाखों और बच्चे इन छह बीमारियों से स्थायी रुप से विकलंग हो गये हालांकि ये बिमारियां टीकाकरण के जरिये रोकी जा सकती थी।

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने 1974 में जब टीकाकरण कार्यक्रम (ई पी आई) शुरु किया तो उस समय विकासशील देशों में 50% से भी कम बच्चों का टीकाकरण हुआ था। तीन साल बाद विश्व स्वास्थ्य संगठन ने संकल्प किया कि वह टीके से रोकी जाने वाली इन छह मुख्य बीमारियों से बचाव के लिए 1990 तक दुनिया के हरेक बच्चे को टीकाकरण की सुविधा उपलब्ध करा देगा।

उस समय तक सभी बच्चों के टीकाकरण का लक्ष्य स्वप्न लगता था। इसके बावजूद इस दशक में लगभग 80 देशों ने अपने यहां टीकाकरण कार्यक्रम को बहुत तेज कर दिया और आज अधिकांश विकासशील देश इस लक्ष्य को प्राप्त करने के बहुत पहुंच करीब गए हैं। उम्मीद है कि चीन इस लक्ष्य को निर्धारित समय से दो साल पहले ही प्राप्त कर लेगा। दुनिया में जितने बच्चे हैं, उनका छठवां हिस्सा सिर्फ चीन में है। बोत्सवाना, क्यूबा, मिस्त्र, जांबीया, इराक, जार्डन, ओमान, खांडा, सऊदी अरब और तंजानिया जैसे देश पहले ही इस लक्ष्य को प्राप्त या लगभग प्राप्त कर चुके हैं। अल्जीरिया देश अगले दो वर्षों में 80-90 फीसदी बच्चों के टीकाकरण की तरफ बढ़ रहे हैं।

कुल मिलाकर इस बात की पूरी सम्भावना है कि विकासशील देशों में 1990 के दशक के दौरान पैदा होने वाले बच्चों में से 70-80% बच्चों का 12 महीने की उम्र तक टीकाकरण हो जाएगा।

हर साल पैदा होने वाले बच्चों में से लगभग 50% को खसरे का और 50% से ज्यादा को अन्य पांच ई पी आई रोगों के टीके पहले से ही लगाए जा रहे हैं, लेकिन महिलाओं में टेटेनस के टीकाकरण (जो नवजात शिशुओं का बचाव करता है) का स्तर 25% से ठीक नीचे है। 1987 में टीकाकरण से कुल मिलाकर लगभग 15 लाख नवजात शिशुओं और बच्चों को छह ई पी आई रोगों से बचाया गया और इस तरह वे मौत के मुहं में ने से बच गए।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के विस्तृत टीकाकरण कार्यक्रम के निदेशक, डॉ. रैल्फ हेंडर्सन कहते है, ''एक दशक से थोड़े अधिक समय में ही चुपचाप एक जन स्वास्थ्य क्रांति हो गई।

मामले प्रकाश में आते हैं। अकेले अफ्रीका में ही दस लाख बच्चे हर साल इस रोग के कारण मौत की नींद सो जाते हैं। आज पूरे विश्व में दो अरब लोगों को मलेरिया का खतरा बना हुआ है।

दूसरे विश्व युद्ध के बाद पूरे विश्व में मच्छर विरोधी अभियान के तहत काफी बड़े पैमाने पर कीटनाशकों का छिड़काव किया गया। इसके काफी अच्छे परिणाम भी निकले। पूरे विश्व में मलेरिया व मच्छर नाममात्र को ही रह गए। लेकिन 1970 के आते-आते मनुष्य जीती हुई बाजी हार गया और विश्वभर में मलेरिया पुनः सिर उठा कर खड़ा हो गया।

अब जीन तकनीक की मदद से आशा है कि जल्दी-ही चिकित्सा वैज्ञानिक मलेरिया रोधी टीके बनाने में सफल हो जाऐगें। चिकित्सा वैज्ञानिकों का विश्वास है कि ये टीके काफी विश्वसनीय, प्रभावी और सुरक्षित होंगे। इन्होने मच्छर, परजीवी और मानव, तीनों के आपसी संबंधो को और अनुवांशिकी को समझने का दावा किया है।

चिकित्सा वैज्ञानिकों का कहना है कि मलेरिया परजीवी की स्पोरोजोइट, मेरोजोइट व मैगोटोसाइट, तीनों ही स्थितियां अनुवांशिक रूप से भिन्न हैं। स्पोरोजोइट और मेरोजोइट वैक्सीन विकसित करने के

लिए अनुसंधान कार्य अंतिम चरण में चल रहा है। मेरोजोइट वैक्सीन का विकास स्पोरोजोइट वैक्सीन के मुकाबले कठिन है। इसका कारण है कि मेरोजोइट बहुरूपी है। इसकी एंटीजनिक भिन्नता काफी अधिक है। वैज्ञानिक अब तक मेरोजोइट की सतही प्रोटीन के लगभग २०० रूपों की पहचान कर चुके हैं। अब इस विषय पर अनुसंधान चल रहा है कि इन २०० एन्टीजनों में से टीके के लिए कौन सी प्रोटीन उपयुक्त है।

आरफरी मैन एवं एंथनी होल्डर नामक वैज्ञानिक मेरोजोइट वैक्सीन के विकास कार्य में लगे हैं। इन दोनों ने पांच साल के कठिन परिश्रम के बाद मेरोजोइटकी एक सतही बड़ी प्रोटीन प्राप्त करने में सफलता पा ली है।

किसी भी प्रणाली से अलग किये गये इच्छित वंशाणु को जब बैक्टीरिया में प्रवेश कराया जाता है, तो बैक्टीरिया विभाजित न होने के कारण इसकी असंख्य प्रतिलिपियां (क्लोन) स्वयं तैयार की जाती हैं और साथ में ही, एंटीजन (प्रोटीन) भी बड़ी मात्रा में प्राप्त होते है। इस एंटीजन से ही मलेरिया परजीवी का बाहरी कोट तैयार होता है। इस एंटीजन का ही टीके के रूप में प्रयोग किया जाएगा। आशा है कि जल्दी ही चिकित्सा वैज्ञानिक मलेरिया के विरूद्ध एक विश्वसनीय एवं सुरक्षित टीके का आविष्कार कर लेंगे।

गर्भ निरोधः हमारे देश में पहली गर्भ निरोधक वैक्सीन मनुष्यों पर परीक्षण के लिए तैयार है। इंडियन इंस्टीट्यूट आफ साइंस, बंगलौर के कुछ वैज्ञानिकों ने यह वैक्सीन तैयार की है। वैक्सीन के जहरीलेपन की जांच लखनऊ के केन्द्रीय ड्रग रिसर्च इंस्टीट्यट में हो चुकी है। वैक्सीन की खोज करने वाले वैज्ञानिकों के नेता, डा. एन. आर. मुदगल का कहना है कि इससे काम भावना पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, परन्तु इससे शुक्राणुओं की
मात्रा और स्तर जरूर कम होगा। वैक्सीन की जांच पहले चूहों और बंदरो पर की गयी। ऐसे टीकों के विकास को विश्व स्वास्थ्य संगठन भी प्रोत्साहित कर रहा है। ऐसे टीके विकसित भी हो चुके हैं जो प्लेसेंटा हार्मोनों, ''बी-एच पी सी'' के विरूद्ध पर्याप्त मात्रा में प्रतिपिंड बनाते हैं।

कुष्ठः वैज्ञानिक अब कुष्ठ रोग से बचाने के लिए भी टीके बनाने के कार्य में जुटे है। लंदन में कुष्ठ रोग का एक टीका विकसित किया गया है जिसका परीक्षणअदक्षिण अफ्रीकी देश, मलावी की एक बस्ती के 12,000 लोगों पर किया जाना है। इस बस्ती में पिछले २० सालों में चालीस हजार व्यक्ति इस रोग के शिकार हो चुके हैं।

अनुसंधान या खोजों की सार्थकता का तब तक कोई अर्थ नहीं है जब तक कि वह प्रयोगशाला में सीमित हो या विशिष्ट वर्ग की ही पहुँच में हो। इन खोजों को आसानी से आम जनता तक उपलब्ध कराना एवं टीकों की उपयोगिता से अवगत कराने से ही अनुसंधान का उद्देश्य सफल माना जा सकता है। तभी विश्व स्वास्थ्य संगठन एवं यूनीसेफ वर्ष २००० तक सबके लिए स्वास्थ्य का लक्ष्य पूरा कर सकता है। ∟

दुखःद निधन

हि. वि. सा. परिषद की कार्यकारिणी समिति के भूतपूर्व सदस्य, श्री राकेश कुमार का 15 मार्च 1992 को कैन्सर से दुखःद निधन हो गया। उनका जन्म 2 अक्टूबर, 1942 को मध्य प्रदेश के पन्ना जिले में हुआ था। उन्होंने जबलपुर विश्वविद्यालय से मेकेनिकल एन्जीनियरिंग में उपाधि प्राप्त की और वे वर्ष 1964 से भा. प. अ. केंन्द्र में विभिन्न पदों पर आसीन रहे।

''वैज्ञानिक'' परिवार श्री राकेश कुमार के असामायिक निधन पर इनके शोक संतप्त परिवार को अपनी हार्दिक संवेदना प्रकट करता है और भगवान से दिवंगत आत्मा को अनन्त शान्ति प्रदान करने की प्रार्थना करता है।

-संपादक

भारतीय उपग्रह कार्यक्रम

डा. आनन्द कुमार शर्मा
वैज्ञानिक, थर्मल डिविजन
इसरो उपग्रह केन्द्र, बैंगलोर- 560 017

गत वर्षों में अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी के विकास एवं प्रसार में भारत ने अभूतपूर्व सफलता अर्जित की है। दूर संचारण भू-सर्वेक्षण, मौसम विज्ञान आदि जैसे जटिल क्षेत्रों में आज भारतीय अंतरिक्ष सेवाओं की आवश्यकता सार्थक सिद्ध हो गई है। प्रस्तुत लेख में भारतीय उपग्रह कार्यक्रम की विभिन्न परियोजनाओं एवं उनकी उपादेयता पर प्रकाश डाला गया है।

किसी भी राष्ट्र के योजनाबद्ध विकास के लिए विश्वसनीय एवं सामयिक सूचनाओं की आवश्यकता होती है। भारत जैसे बृहत क्षेत्रफल, जनसंख्या एवं विषम भौगोलिक परिस्थितियों वाले देश के लिए भू-आधारीय विधियों द्वारा सही समयबद्ध सूचना एकत्रीकरण एवं प्राकृतिक संसाधन सर्वेक्षण एक जटिल प्रक्रिया है। उपग्रह आधारित भू सर्वेक्षण प्रणाली ही इसका एक मात्र सरल एवं सशक्त विकल्प है। पिछले कुछ दशकों में प्राप्त अंतरिक्ष उपलब्धियों के कारण आज उपग्रह जन जीवन के अभिन्न अंग बन गये हैं। मौसम विज्ञान, संचार एवं सुदूर संवेदन के क्षेत्रों में तो उपग्रहों ने तकनीकी क्रान्ति ला दी है।

विज्ञान और तकनीकी में असाधारण प्रगति के बावजूद भी भारत में प्रति वर्ष प्राकृतिक विपदाओं था-बाढ़, तूफान, सूखा, भूस्खलन आदि से अपार जान माल की हानि होती है। मौसम उपग्रहों की सहायता से मौसम का पुर्वानुमान लगाकर उचित समय से संकट कालीन चेतावनी दे कर आज हम किसी सीमा तक इस जन धन क्षति को बचाने मे सक्षम हुए हैं। पहले जहाँ किसी एक क्षेत्र का सूखा या बाढ़ की स्थिति का सर्वेक्षण हवाई जहाज द्वारा करने में हमें कई सप्ताह लग जाते थे आज वही पूरे देश का सर्वेक्षण उपग्रहो की सहायता से कुछ ही दिनों में सम्भव है। ये उपग्रह किसी भी क्षेत्र का अवलोकन तुरन्त और बार बार कर उस क्षेत्र की स्थिति की जानकारी के साथ साथ वहां समय के साथ हो रहे परिवर्तनों की भी सूचना देते रहते हैं।

संचार माध्यमों में असाधारण तकनीकी विकास, जो आज जनसाधारण द्वारा अनुभव किया जाने लगा है, अंतरिक्ष कार्यक्रमों के प्रसार की ही देन है। ऊँची पहाडी चोटी पर जहाँ तारों का जाल नही बिछाया जा सकता, रहने वाला ग्रामीण भी आज उपग्रहों के द्वारा दूर देश विदेशो में सीधा डायल करके (एस टी डी - आई एस डी) दूर भाष पर अपने स्वजनों से सम्पर्क स्थापित कर सकता है। सहस्त्रों मील दूर विश्व के किसी कोने में हो रहे घटनाक्रमों का जीवन्त दृश्य आज हम घर बैठे दूरदर्शन पर देख सकते है। व्यापार, सूचना प्रसारण, साक्षरता अभियान, प्रौढ़ शिक्षा, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण, सामान्यज्ञान प्रसार आदि अनेक महत्वपूर्ण क्षेत्रों में उपग्रह आधारित दूर संचार एवं देशव्यापी दूरदर्शन प्रसारण माध्यम महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर रहे हैं।

सुदूर संवेदन के क्षेत्र में स्वदेशी तकनीकी के विकास में भारत ने विशेष सफलता अर्जित की है। विभिन्न संवेदन विधियों के माध्यम से दूर से ही वस्तुओं और घटनाओं के विषय में सूचना या आंकड़ों के भिग्रहण को ''सुदूर संवेदन'' कहते है। यद्यपि चुम्बकत्वमापी, भूकम्पनमापी, गुरुत्वाकर्षणमापी भी संवेदन विधिया है। परन्तु ये विधियाँ बल क्षेत्रों या सौनार तरंगो की माप पर आधारित हैं। सूदूर संवेदन की सबसे मान्य परिभाषा विद्युत चुम्बकीय विकिरण (जो कि वस्तुओं से परावर्तित, प्रकीर्णित व उत्सर्जित होता है) के संवेदन को उद्दिष्ट करती है। वस्तुओं के सुदूर संवेदन के लिए वस्तुओं के परावर्तन संबंधित गुणों का ज्ञान होना बहुत ही महत्वपूर्ण है। सुदूर संवेदन के लिए केवल उन्हीं बैण्डों का चयन किया जाता है जहाँ पर भिन्न भिन्न पदार्थों से परावर्तित विकिरणों का स्वरुप एक दूसरे से पर्याप्त रुप में भिन्न हो जिससे सुदूर संवेदन चित्रों में पदार्थों को पहचानने में कोई कठिनाई या भूल न हो।

सुदूर संवेदन एक ऐसी तकनीक है जिसकी सहायता से पृथ्वी की सतह पर स्थित किसी वस्तु से

उत्पन्न होने वाले, प्रतिबिम्बित होने वाले या टकराने वाले विकिरणों को प्रकाश और अवरक्त किरणों का प्रयोग करने वाले कैमरों से नीले-हरे, नीले-लाल और लगभग अवरक्त रंगों के चित्रों में उतारा जा सकता है और फिर इन रंगीन चित्रों को पृथ्वी पर प्राप्त करके उनको वास्तविक दिखाने वाले चित्रों में परिवर्तित कर दिया जाता है। इन चित्रों से कृषि, वानिकी, खनिज सम्पदा, सागर सर्वेक्षण आदि अनेक विषयों पर महत्वपूर्ण जानकारी इतनी शीघ्र मिल जाती है कि भू-आधारीय विधियों द्वारा इन्हें प्राप्त करने में एक बड़े वैज्ञानिक दल को अनेक वर्ष लग जाते हैं। सारणी-1 में प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंध में सुदूर संवेदन उपग्रह के उपयोग के संभावित क्षेत्रों को बताया गया है।

भारतीय उपग्रह कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य राष्ट्र को स्वावलम्बी रुप से प्रचालनात्मक अंतरिक्ष सेवायें उपलब्ध कराना है। देश को जिन अंतरिक्ष सेवाओं की आवश्यकता है उनमें दूरसंचार, देशव्यापी दूरदर्शन प्रसारण, प्राकृतिक संसाधन सर्वेक्षण एवं मौसम विज्ञान आदि प्रमुख हैं। भारतीय उपग्रह कार्यक्रम का उत्तर-दायित्व राष्ट्र की आवश्यकता के अनुरुप स्वदेशी अंतरिक्षयानो का निर्माण तथा सम्बधित भू-केन्द्रों की स्थापना करना है ताकि देश के लिए उपग्रह आधारित

सारणी-1

प्राकृतिक संसाधनों के प्रबन्ध में सुदूर संवेदन उपयोग के संभावित क्षेत्र

कृषि विज्ञान

कृषि सम्बधी भू उपयोग
फसलों की अवस्था, उनके अन्तर्गत आने वाले क्षेत्रों का प्रसार व उनसे होनेवाले उत्पादन का अध्ययन
कीड़े (पेस्ट्स) एवं बीमारियों का पता लगाना
सूखे की स्थिति का मूल्यांकन

भू-विज्ञान

क्षेत्रीयं भू-वैज्ञानिक मानचित्रण संभवित भू-जल क्षेत्रों का मानचित्रण, खनिज एवं खनिज तेल अन्वेषण, इमारत निर्माण पदार्थो के संभावित क्षेत्रों का सर्वेक्षण
भू-तापीय क्षेत्रों (जियोथरमल एरियाज) का अध्ययन
भू-वैज्ञानिक एवं भू-आकृतिक (जियोलाजिकल व जियोमार्फोलाजिकल) सर्वेक्षण बांध बनाने, तेल पटरियों, नहरों, सडकों एवं उच्च विद्युत लाइनों को बिछाने के लिए उपयुक्त भू-क्षेत्रों का अध्ययन

वन-विज्ञान

वनो का विस्तार, उनके प्रकार एवं घनत्व का अध्ययन
परती भूमि का मानचित्रण
वनरक्षण मूल्यांकन

मृदा-विज्ञान

मृदा संयोजन
मृदा लवणता एवं क्षारता का अध्ययन
समस्या ग्रस्त भूमि का पता लगाना

समुद्री संसाधन एवं तटीय अध्ययन

तटीय भू आकृति (मार्फोलाजी) एवं पर्यावरण का अध्ययन
प्रलंबित कणों का विश्लेषण (सस्पेंडड सेडिमेंट एनालिसिस)
क्लोरीफिल एवं फाइटोप्लैंकटॉन का अध्ययन
तटवर्ती प्रक्रियाओं, गीली भूमि एवं तटरेखीय परिवर्तन का अध्ययन

जल-संसाधन

जल गुणवत्ता (क्वालिटी) अध्ययन, हिम सर्वेक्षण एवं हिम जल बहाव (स्नो मेल्ट रन आफ)
जलविभाजन क्षेत्रों के गुण विशेष का अध्ययन
जलाशयों में बालू के जमाव दर का पता लगाना
बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों का मानचित्रण
जल वृष्टि अनुमान
जलनिकास तंत्र (ड्रेनेज नेटवर्क) का मानचित्रण
संभावित मत्सय पालन (फिसरिज) एवं मनोरंजन स्थलों (रिक्रएशन साइट्स) के लिए सर्वेक्षण

शहरी एवं भूमि उपयोग

शहरी विस्तार (स्प्राल) अध्ययन, भू-उपयोग एवं भू-आवरण (लेन्ड कवर) अध्ययन

सारणी-२

भारतीय उपग्रह परियोजनायें

निम्न भू कक्षा	:	आर्यभट्ट भास्कर-I वII रोहिणी श्रृंखला (आर. एस.-I, आर.एस.डी.-1 व आर. एस. डी.-२)
ध्रुवीय कक्षा	:	भारतीय सुदूर संवेदक उपग्रह (आई. आर. एस.-I, ए,बी,सी डी,व ई)
भू-स्थिर कक्षा	:	एप्पल इन्सैट- I ए, बी, सी, डी व ई

सेवाओं की निरंतर उपलब्धि सुनिश्चित की जा सके। भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) के संस्थापक अध्यक्ष डा. विक्रम साराभाई के शब्दों में-

"भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम वाह्य अंतरिक्ष के शान्तिपूर्ण उपयोग के मूलभूत सिद्धान्त पर आधारित है। विकसित राष्ट्रों की भांति हमारी चांद या अन्य ग्रहों के अन्वेषण या मानव अंतरिक्ष उडानों मे कोई रुचि नही है। लेकिन आधुनिक अंतरिक्ष तकनीकी के मानव प्रगति और समाज कल्याण के कार्यो में हम किसी अन्य राष्ट्र से पीछे नही रह सकते। हमारा अंतरिक्ष कार्यक्रम पूर्णतः कठोर आर्थिक एवं सामाजिक प्रगति के लिए उत्तरदायी है। हमारा उद्देश्य स्पष्ट है और हम इसके प्रति पूर्णतः सजग हैं।"

प्रारम्भ में अंतरिक्ष सम्बन्धी सभी अनुसंधान कार्य परमाणु ऊर्जा विभाग के तत्वावधान में किये थे। सन 1969 में अंतरिक्ष अनुसंधान की बढ़ती हुई गतिविधियो को देखते हुए भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान की संगठन (इसरो) की स्थापना की गयी। तदोपरान्त सन 1972 में अंतरिक्ष आयोग एवं अ तरिक्ष विभाग के गठन के साथ अंतरिक्ष कार्यक्रमों को एक स्वतंत्र संगठनात्मक आधार दिया गया। संगठनात्मक रुप से अंतरिक्ष आयोग, अंतरिक्ष से सम्बन्धित सभी विषयों पर राष्ट्रीय नीतियों का निर्धारण करता है। जबकि अंतरिक्ष विभाग इन नीतियों को भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) के माध्यम से क्रियान्वित करता है। अंतरिक्ष विभाग इसरो की अनुसंधान एवं विकास प्रयोगशालायें देश भर मे स्थित है। इनमें से स्वदेशी अंतरिक्ष यानों के निर्माण का मुख्य उत्तरदायित्व बंगलूर स्थित इसरो उपग्रह केन्द्र का है।

उपग्रह परियोजनायें

अंतरिक्षयान जैसी परिष्कृत तकनीकी के विकास में प्रचालनात्मक स्थिति प्राप्त करने से पहले भारतीय उपग्रह कार्यक्रम को अनेक कठिन प्रायोगात्मक एवं विकासात्मक चरणों से गुजरना पड़ा। संचार एवं सुदूर संवेदन उपग्रह तकनीकी के जटिलतम क्षेत्रों में आज हमने प्रचालनात्मक क्षमता को लगभग प्राप्त कर लिया हैं। सारणी-२ में कक्षीय स्थिति के अनुसार भारतीय पग्रह परियोजनाओं का विवरण दिया गया है।

आर्यभट्ट

भारतीय उपग्रह कार्यक्रम का सूत्रपात आर्य भट्ट के सफल विकास के साथ आरंभ हुआ। लगभग 360 कि. ग्रा. वजन के आर्यभट्ट उपग्रह को 619x562 कि. मी. की लगभग वृत्ताकार (सरकुलर) कक्षा में 50.7° नति पर सोवियत इन्टरकॉसमोस राकेट द्वारा 19 अप्रेल 1975 को प्रमोचित किया गया। यह एक प्रचक्रण स्थायीकृत (स्पिन स्टैबलाइज्ड) उपग्रह था। आर्यभट्ट मुख्यरुप से एक प्रायोगिक उपग्रह था, जिसका उद्देश्य अंतरिक्ष योग्य उपग्रहों की स्वदेशी अभिकल्पना (डिजाइन), संविरचना (फेब्रीकेशन), परीक्षण तथा कक्षीय व्यवस्था से सम्बन्धित प्रमुख सुविधाओं की स्थापना में दक्षता अर्जित करना था। लगभग गोलाकार आर्यभट्ट उपग्रह में विद्युत शक्ति के लिए पिण्ड आरोपित सौर पैनल (बोडी माउन्टेड सोलर पैनल) तथा निकल-केडमियम बैटरियों का उपयोग किया गया था। इस उपग्रह ने इसरो को अधिक सम्मिश्र उपग्रहों के विकास हेतु आवश्यक स्तर की विशेषज्ञता प्रदान की।

भास्कर

भास्कर-I भारत का पहला प्रायोगात्मक भू-प्रेक्षण उपग्रह था। भास्कर-II भास्कर-I उपग्रह का ही एक उन्नत रुप था। भास्कर उपग्रहों का मुख्य उद्देश्य वानिकी,

कृषि, जलसंसाधन, भू-विज्ञान व समुद्री विज्ञान से सम्बन्धित जानकारी उपलब्ध करना था। आकार में आर्यभट्ट के ही समान लगभग 450 कि. ग्रा. भार वाले भास्कर उपग्रहों को 51^0 की नति पर 500 कि. मी. की वृतीय कक्षा में छोड़ा गया। भास्कर-I का प्रमोचन 7 जून 1979 एवं भास्कर-II का प्रमोचन 20 नवम्बर, 1981 को सोवियत इन्टरकॉसमोस राकेट द्वारा किया गया।

भास्कर उपग्रह भी आर्यभट्ट के ही समान प्रचक्रण स्थायीकृत थे। इनमें स्पिन-अक्ष अभिविन्यास (स्पिन एक्सिस ओरिएनटेशन) तथा स्पिन दर नियंत्रण (स्पिन रेट कन्ट्रोल) दोनों की सुविधा थी। यह उपग्रह प्राथमिक नीतभार (पेलोड) के रुप में विडियोकॉन ट्यूबों पर आधारित दो टी. वी. कैमरे जो दृश्य (0.6 माइक्रोन) एवं लगभग अवरक्त (0.9 माइक्रोन) बैण्डों में सुग्राही थे, और एक द्विआवृति उपग्रह सूक्ष्मतरंग रेडियोमीटर (समीर) ले गया था, जिसका उद्देश्य दृश्य, लगभग अवरक्त और सूक्ष्मतरंग आवृत्तियों में परीक्षण करना था। भास्कर उपग्रहों ने अपने सूक्ष्मतरंग रेडियोमीटर और टी. वी. कैमरे द्वारा उपयोगी आंकडे उपलब्ध कराये। टी. वी. कैमरों से प्राप्त 1^0 विभेदन वाली प्रतिबिम्बिकियों का उपयोग भारतीय उपमहाद्वीप के हिम आवरण, वानिकी, कृषि और जल निकायों जैसे विशिष्ट लक्षणों के मानचित्रण के लिए किया गया। समुद्र सतह ताप व आन्तरिक जल समुदायों से सम्बन्धित सूक्ष्मतरंग रेडियोमीटर आंकड़ों से मानसून गतिविधियों की सूचना और बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों का पता लगाने के लिए किया गया। भास्कर- II उपग्रह में समुद्रतल पर द्रव जल की मात्रा में अन्तर ज्ञात करने के लिए निष्क्रिय सूक्ष्मतरंग रेडियोमीटर में एक 31 गीगाहर्ट्ज-चैनल की अतिरिक्त सुविधा थी। भास्कर उपग्रहों द्वारा प्राप्त अनुभव ने स्वदेशी प्रचालनात्मक सुदूर संवेदन उपग्रह तकनीकी के विकास में बहुमूल्य योगदान दिया।

रोहणी उपग्रह श्रृंखला

रोहणी श्रृंखला के अर्न्तगत तीन रोहणी उपग्रहों - आर. एस. 1, आर. एस. डी.-1, आर. एस. डी.-2 को भारत द्वारा निर्मित उपग्रह प्रमोचन यान-3 (एस. एल. वी.-3) द्वारा दीर्घवृतीय कक्षाओं में प्रमोचित किया गया। इस अभियान का मख्य उद्देश्य एस. एल. वी. 3 राकेट की उडान निष्पादन का मूल्यांकन करना था। इसके अतिरिक्त अभियान के द्वितीयक लक्ष्य के रुप मे पृथ्वी के लिए गये चित्रों का संप्रेषण करके जल, वनस्पति, हिम, मेघ आवरण आदि का निर्धारण करना था।

श्रृंखला के पहले उपग्रह आर. एस.-1 को, जिसका उड़ान के समय भार 35 कि. ग्रा. था। भारतीय साथ 305x916 कि. मी. की कक्षा में 18 जुलाई 1980 को छोडा गया। मख्य रुप से एस. एल. वी.-3 राकेट के चतुर्थ चरण निष्पादन के मानीटरन हेतु अभिकल्पित किये गये इस उपग्रह ने मानीटरन हेतु अभिकल्पित किये गये इस उपग्रह ने अपने कार्य का सफलता पूर्वक निर्वाह किया। इसके अतिरिक्त इस उपग्रह में एक स्वदेशी रुप से विकसित सौर शक्ति प्रणाली भी थी। इसका निष्पादन भी सामान्य रहा। यह उपग्रह अपने 100 दिन की अभिकल्पित जीवन काल से भी अधिक समय (एक वर्ष) तक चालू रहते हुए कक्षा में रहा।

श्रृंखला का दूसरा-अनुवर्ती रोहीणी उपग्रह आर. एस. डी.-1 एस. एल. वी.-3 की पहली विकासात्मक उडान (एस.एल.वी.-3 डी.-1) द्वारा 31 मई, 1981 को प्रमोचित किया गया। यह उपग्रह अपने साथ एक लेण्डमार्क सेन्सर नीत-भार ले गया था। यह कैमरा एक कि. मी. विमेदन के साथ 140x140 कि. मी. आकार के प्रतिबिम्बों के संसचन मे सक्षम था। इस उपग्रह की युगपत उपप्रणाली एवं कैमरे का निष्पादन सामान्य रहा। किन्तु प्रमोचन राकेट की किसी खराबी के कारण निर्दिष्ट कक्षा से नीचे प्रक्षेपित हो जाने से यह अंतरिक्षयान 9 दिन के अन्दर पुनः पृथ्वी वायुमंडल के अन्दर प्रविष्ट कर गया।

42 कि.ग्रा. भार वाले तीसरे उपग्रह आर.एस.डी.-२ का प्रमोचन 375×875 कि.मी. की कक्षा में एस.एल.वी.-३ की दूसरी विकासात्मक उड़ान (डी.-२) द्वारा 17 अप्रैल 1983 को किया गया। यह अंतरिक्षयान अपने साथ एक दो बैण्डवाला कैमरा (स्मार्ट सैंसर) ले गया था। आर. एस. डी.-२ उपग्रह ने 5000 से अधिक प्रतिबिम्बिकियों भेजी और अपनी संसाधक क्षमता से स्मार्ट सेंसर के

माध्यम द्वारा प्राप्त आकृति वर्गीकरण पर आँकडे उपलब्ध कराये। जिनका उपयोग कक्षा तथा अभिवृति निर्धारण में यथावश्यक सुधार के लिए किया गया। लगभग 17 माह तक कक्षा में रहने और अपने सभी प्राथमिक तथा द्वितीयक अमियान लक्ष्य पूर्ण करने के उपरान्त आर.एस.डी.-२ उपग्रह को 24 सितम्बर, 1984 को बन्द कर दिया गया।

एरियन पैसेंजर पेलोड एक्सपेरिमेंट (एप्पल)

प्रथम परीक्षण भू-स्थिर भारतीय संचार उपग्रह एप्पल को अधिकांशतः स्वदेशी घटकों से निर्मित किया गया था। इसे 19 जून, 1981 को यूरोपियन स्पेश एजेंसी के एरियन राकेट की तीसरी विकासात्मक उडान पर फ्रेंच गुयना के कुरु अंतरिक्ष अड्डे से प्रमोचित किया गया। प्रमोचन के समय 673 कि. ग्रा. भार वाले एप्पल उपग्रह को नामीय अन्तरण कक्षा से भू-तुल्यकालिक कक्षा में उठाने के लिए एक ठोस अपभू अभिवर्धित मोटर (अपोजी बूस्ट मोटर) और 36 मेगाहर्ट्ज बैण्ड विस्तार वाले २ प्रेषानुकर (एक अतिरिक्त) लगे थे। यह एक तीन-अक्षीय स्थायीकृत उपग्रह था, जो 4-6 गीगाहर्ट्ज बैण्ड मे कार्य करता था। इस अंतरिक्षयान को 102° पू. देशान्तर में स्थापित किया गया था। उपग्रह का नीत-भार प्रचालन प्रमोचन के एक माह बाद आरम्भ हुआ। कंप्यूटर इस अंतरिक्षयान को दो वर्ष की नियोजित अवधि से अधिक समय तक प्रचालित रहने के बाद सितम्बर 1983 में अन्तिम रुप से बन्द कर दिया गया। इस उपग्रह से भू-तुल्यकालीन कक्षा में 3-अक्षीय स्थायीकृत अंतरिक्ष वैज्ञानिको को अतुल्यनीय अनुभव मिला।

तनित रोहणी उपग्रह श्रृंखला (श्रोस)

श्रोस उपग्रहों को मुख्यतः अंतरिक्ष विज्ञान, प्रोद्योगिकी व उपयोगो से संबंधित परीक्षण करने के लिए अभिकल्पित किया गया है। लगभग 150 कि. ग्रा. भार वाले इन उपग्रहों को 400+40 कि. मी. की वृत्ताकार कक्षा में स्वदेशी संवर्धित उपग्रह प्रमोचन यान (ए. एस. एल. वी.) द्वारा प्रमोचित किये जाने की योजना है।

श्रोस-ए तथा श्रोस-बी को ले जाने वाली ए. एस. एल. वी. राकेट की प्रथम दो उडानें (डी.-1 एवं डी-2) 24 मार्च, 1987 व 13 जुलाई, 1988 को की गयी। किन्तु प्रमोचन यान के विफल होने के कारण ये उपग्रह कक्षा में नही पहुंच सके। श्रोस-ए तथा श्रोस-बी उपग्रहों में गामा किरण वैज्ञानिक प्रयोग तथा सुदूर संवेदन के लिए एक विद्युत प्रकाशिक नीत भार (मियोस)) थे। इसके बाद के श्रोस-सी तथा श्रोस-डी अभियानो के वायुविकी, आयनमंडलीय अनुसंधान तथा एक्स किरण खगोल शास्त्र के क्षेत्रों में वैज्ञानिक आविष्कार करने के लिए अभिकल्पित किया गया है। अंतरिक्षयान बस का सरुपण एक बहुमुखी प्लेटफार्म के चारो ओर किया गया है, जिसमें प्रचक्रण तथा तीन-अक्षीय पिण्ड स्थायित्व दोनों का विकल्प है जिसका उपयोग हाइड्रोजन प्रतिक्रिया नियंत्रण प्रणाली, जैसी स्वदेशी प्रौद्योगिकियों के परीक्षण के रुप में किया जाएगा।

भारतीय सुदूर संवेदन उपग्रह (आई.आर.एस.)

भारतीय सुदूर संवेदन उपग्रह देश के प्राकृतिक संसाधन सर्वेक्षण के लिए एक महान उपलब्धि है। इस श्रृंखला का पहला उपग्रह आई. आर. एस.-ए, 17 मार्च, 1988 को और दूसरा आइ. आर. एस.- बी, 27 अगस्त, 1991 को बेकानूर स्थित सोवियेत राकेट वोस्तोक द्वारा अंतरिक्ष में छोडे गये। लगभग 975 कि. ग्रा. भार वाले ये दोनो उपग्रह 904 कि. मी. की ध्रुवीय सूर्यतुल्यकालिक (पोलर सन सिन क्रोनस) कक्षा में स्थित है। ये उपग्रह 103 मिनिट में पृथ्वी का एक चक्कर पूरा करते हैं तथा इनका चित्रण क्षेत्र प्रतिदिन 1° (30.5 कि. मी.) आगे बढ़ जाता है। इस प्रकार ये 22 दिन में 307 प्ररिक्रमा कर के सम्पर्ण पृथ्वी का चित्र खींच सकते हैं।

आइ. आर. एस. उपग्रह दृश्य एवं अवरक्त दोनो बैण्डों में चित्र खीचते हैं। भू-संसाधन सर्वेक्षण के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए ये उपग्रह 4 स्पेक्ट्रमी बैण्डों में, 70 मीटर तथा 35 मीटर के विभेदन के साथ भारतीय उपमहाद्वीप के ऊपर आधारित प्रतिबिम्बिकियां प्राप्त करने के लिए तीन ठोस अवस्था युक्ति पर आधारित प्रतिबिम्बन कैमरे (लिस-I,लिस-II ए, (लिस-II बी, लिस=लिनियर इमेजिंग सैल्फ स्केनिंग) ले गये है।

कक्षा में स्थापित आई. आर. एस. I ए. और -Iबी दोनो समरुप हैं। आइ. आर. एस.-I ए उपग्रह ने कक्षा मे अपने निर्धारित 2 1/2 वर्ष के कार्यकाल के स्थान पर सफलतापूर्वक 3 1/2 वर्ष पूरे कर लिए हैं और अभी भी पूर्ण दक्षता से कार्य कर रहा है। श्रृंखला के दूसरे उपग्रह आइ. आर. एस.-I बी ने भी अपना कार्य पूर्ण सफलतापूर्वक करना आरम्भ कर दिया है। इन दोनों ही उपग्रहों द्वारा लिये चित्रों ने मृदा संयोजन, कृषि, जल स्त्रोतो, मत्स्यपालन समुद्री संसाधन खनिज सर्वेक्षण आदि क्षेत्रों में देश को उल्लेखनीय जानकारी उपलब्ध करायी है।

आइ. आर. एस. श्रृंखला के आगामी उपग्रहों में उन्नत विमेदन के नीतभारों (उच्च सर्ववर्णी तथा बहु स्पेक्ट्रमी कैमरों) को ले जाने की योजना है। अभियान की भावी योजनाओं में सूक्ष्मतरंग बैण्डों की आवृतियो का भी सुदूर संवेदन में उपयोग करने का लक्ष्य रखा गया है।

भारतीय राष्ट्रीय उपग्रह (इन्सैट)

इन्सैट एक बहुउद्देशीय राष्ट्रीय उपग्रह है। इस अभियान का मुख्य उद्देश्य दूर संचार, प्रसारण और मौसम विज्ञान के क्षेत्रों में उन्नत स्तर की राष्ट्रव्यापी 'सेवाये' उपलब्ध कराना है। इन्सैट भू-स्थिर (जियो-स्टेशनरी) कक्षा का एक त्रि-अक्षीय नियंत्रित उपग्रह है, जिसमें द्विनोदक प्रतिक्रिया नियंत्रण प्रणाली प्रणोदक (बाईप्रोपेलेनट रिएक्शन कन्ट्रोल थ्रसटर) का उपयोग किया जाता है। सौर बल आधूर्ण की प्रतिपूर्ति हेतु इन उपग्रहों की दक्षिण दिशा में एक असममितीय सौर व्यूह और उत्तर दिशा में एक सौर सेल लगा होता है।

इन्सैट की पहली पीढ़ी के अंतरिक्षयानों (इन्सैट-I) का निर्माण संयुक्त राज्य अमेरिका के फोर्ड एयरोस्पेस एन्ड कम्यूनिकेशनस कार्पोरेशन द्वारा किया गया था। इस पीढ़ी के प्रथम उपग्रह इन्सैट- I ए को 10 अप्रैल 1982 में अमेरिका के डेल्टा यान द्वारा प्रमोचित किया गया। लेकिन कुछ तकनीकी कठिनाइयों के कारण 147 दिन के सफल प्रचालन के उपरान्त इस उपग्रह को बंद कर देना पड़ा। तदोपरान्त इन्सैट-I बी उपग्रह को अमरीकी स्पेस शटल चैलेन्जर से 30 अगस्त, 1983 अंतरिक्ष मे छोडा गया। इस उपग्रह ने मिशन के निर्धारित समय तक पूर्ण क्षमता के साथ कक्षा में अपने कार्य का निर्वाह किया। इन्सैट-1 पीढी के तीसरे उपग्रह, इन्सैट-II सी को 22 जुलाई, 1988 में एरियन राकेट द्वारा प्रमोचित किया गया लेकिन कुछ तकनीकी कठिनाइयों के कारण इस उपग्रह की क्षमता का पूर्ण उपयोग नही किया जा सका। इन्सैट पीढी के अंतिम उपग्रह इन्सैट-I डी को कैनेडी अंतरिक्ष केन्द्र से 12 जून, 1990 को छोडा गया। यह उपग्रह इस समय कक्षा में सफलता से अपना कार्य निर्वाह कर रहा है।

दूसरी पीढी के इन्सैट-II उपग्रहों का निर्माण भारत में इसरो द्वारा किया जा रहा है। ये उपग्रह Psx1-I प्रणाली के अंतरिक्षयानों का स्थान लेंगे। Psx1-II, इन्सैट-I अंतरिक्षयानों से 50 प्रतिशत अधिक भारी, उच्च नीतभार वाला और तीव्र ग्राह्य क्षमता वाले होगे।

इन्सैट-II ए की संविरचना का कार्य इसरो उपग्रह केन्द्र में लगभग पूरा हो चुका है और इन्सैट-II बी इस समय निर्माणाधीन है। इन दोनों उपग्रहों के मुख्य अभिलक्ष्य इस प्रकार हैः

कक्षा	: भू-स्थिर (36000 कि.मी.)
अभियान अवधि	: न्यूनतम 7 वर्ष
कक्षीय स्थिति	:74/88/93.5^0 (पूर्व)
प्रकार	: पिण्ड स्थायीकृत/संगेव वायसड
भार (उपग्रह+ईंधन)	: लगभग 900+1000 कि. ग्रा.
पिण्ड विस्तार	: 193x1.64x1.70 मी.

नीतभारः

- राष्ट्र की दूरसंचार सेवाओं के लिए 12 सामान्य सी-बैण्ड तथा 6 विस्तृत सी-बैण्ड प्रेषानुकर (ट्रांसपोन्डर)
- देशव्यापी दूरदर्शन एवं रेडियो प्रसारण के लिए दो उच्च शक्ति प्रेषानुकार
- मौसम विज्ञान प्रेक्षण के लिए एक अति उच्च विभेदन रेडियोमीटर (वी. एच. एच. आर.) जिसमें दृश्य और अवरक्त दोनों माध्यमों में क्रमशः २ कि. मी. और 8 कि. मी. विभेदन के चित्र लेने की सुविधा होगी।
- वास्तविक काल आंकडा रिले (रिएल टाइम डाटा रिले) के लिए एक 400 गैगाहर्ट्ज प्रेषानुकर
- आपात संकेतों को तुरन्त उपलब्ध कराने के लिए

(शेष पृष्ठ 56 पर)

(पृष्ठ 12 से जारी)

है- इसी तथ्य का उपयोग बर्लिन के वैज्ञानिकों ने अपनी विधि के विकास में किया है।

इस विधि में एक दोष है कि इसके फलस्वरुप कार्बनडॉयवसाइड की बड़ी मात्रा मुक्त होती है जो पर्यावरण को प्रदूषित करती है। इसका एक समाधान भी है। कई शैवाल सामान्य प्रकाश-संश्लेषण में निर्मित कार्बोहाइड्रेट के एक बड़े भाग को पानी में जमा करते हैं और ये शैवाल नीलरक्त जीवाणु को एक पोषण-स्रोत प्रदान कर सकते है। कार्बोहाइड्रेट - विखण्डन के दरम्यान नीलरक्त जीवाणु द्वारा मुक्त कार्बनडॉयक्साइड पानी में घुलकर शैवाल तक पहुँच जाता है जिसका उपयोग पुनः प्रकाश-संश्लेषण में हो जाता है।

इस प्रकार नीलरक्त जीवाणु एवं शैवाल एक दूसरे का पोषण करते है। सूर्य का प्रकाश इस प्रक्रिया में मोटर का कार्य करता है। इस सम्मिलित प्रक्रिया के फलस्वरूप हाइड्रोजन एवं ऑक्सीजन गैस मुक्त होते हैं जो जल के सामान्य विखण्डन-उत्पाद हैं। जीवाणु एवं शैवाल को एक साथ नहीं मिला दिया जाता है क्योंकि मुक्त होने वाले गैस आपस में मिलकर ऑक्सीहाइड्रोजन नामक विस्फोटक पदार्थ का निर्माण करते हैं। अब नीलरक्त जीवाणु एवं क्लेमायड्रोमोनस शैवाल के कार्बनिक अवशिष्ट को मिला देने के बाद एक प्रकाश जीवसंयत्र के विकास की आवश्यकता है यो द्रव वातावरण में शैवाल एवं जीवाणु को अलग रख सके। साथ ही साथ हाइड्रोजन एवं ऑक्सीजन गैस मिश्रित नहीं हो सकें तथा कार्बनिक पोषक पदार्थ एवं कार्बनडायक्साइड का स्थानान्तरण स्वतंत्रतापूर्वक हो सके। इस प्रकार के प्रकाश - जीव - संयत्र की रूप-रेखा एवं क्रिया - विधि अब अनुसंधान का एक चुनौतीपूर्ण क्षेत्र है, क्योंकि विगत प्रयोग मात्र प्रयोगशालाओं में किये गयें हैं।

जल से सस्ते ढंग से हाइड्रोजन गैस प्राप्त करने लिए इस क्षेत्र में और सधन शोध की आवश्यकता है। वह दिन दूर नहीं जब जल से हाइड्रोजन गैस प्राप्त करने के लिए कोई सस्ती विधि निकल आयेगी और हम ऊर्जा-संकट के भय से मुक्त होकर राहत की साँस ले सकेंगे।

■

"विज्ञान पत्रिका" का विमोचन

हिन्दी साहित्य विज्ञान परिषद, भा. प. अ . के, बम्बई, ने "विज्ञान पत्रिका" नामक एक नयी पत्रिका का प्रकाशन हाल ही में प्रारंभ किया है। इसका उद्देश्य इस केंद्र में चल रहे वैज्ञानिक विकास, शोध कार्य एवं अन्य वैज्ञानिक घटनाओं के बारे में जानकारी सरल हिंदी के माध्यम से उन कर्मचारियों (प्रशासन, परिवहन, सुरक्षा प्रभागों तथा अन्य अनिवार्य सेवाओं से संबंधित) तक खास तौर पर पहुंचाना है जिन तक ये जानकारियां सामान्यतः नहीं पहुंच पाती हैं। इस पत्रिका के प्रवेश अंक का विमोचन केंद्र के निदेशक डा. आर चिदम्बरम् द्वारा 2 मार्च 1992 को किया गया।

नशीली दवाओं का रसायनशास्त्र और उनका प्रभाव

डॉ. रमेश ज. भायाणी,
आशिष, विद्यानगर रास्ता-3,
राजकोट-360002.

यों तो ड्रग का अर्थ दवा होता है, लेकिन आज यह नशीले पदार्थो का पर्याय हो गया हैं यदि इनके प्रयोग पर काबू नहीं पाया गया, तो इसके परिणाम किसी महामारी से भी ज्यादा खतरनाक व व्यापक होगें प्रस्तुत लेख में इन नशीले पदार्थो तथा उसके सेवन से उत्पन्न विकृतियों पर प्रकाश डाला गया है।

अवैध दवाएं जहां कहीं भी बनायी या इस्तेमाल की जा रही हैं वस्तुतः वह वहां के सामाजिक ताने बाने को कमजोर कर रही हैं। इनका फैलता प्रसार बहुत से लोगों की जिंदगियों को मिट्टी में मिला रही है। इस ढंग के नशा करने वाले 79% रोगी मृत्यु होने पर ही इसकी तलब से निजात पाते हैं। 3% मामलों में यदि आदमी का आत्मबल या संयम बहुत मजबूत हो, तभी अपने को ही वह मौत के मुंह से निकाल सकता है। बहुत कम समय में ही मादक द्रव्य आदमी के स्वस्थ शरीर को खोखला और कमजोर बना देता है। इसकी तलब आदमी को कुछ भी करने के लिए विवर्श कर देता है। आरंभ में आदमी पदार्थ को मजे के लिए कम मात्रा में लेता है। परंतु धीरे धीरे वह इसकी मात्रा को बढाता जाता है और इसका व्यसनी बन जाता है। जब उसका मन चाहा पदार्थ नहीं मिलता है तो वह शारीरिक पीडा का अनुभव करने लगता है, जिसे वैज्ञानिक भाषा में 'विथड्रोअल सिम्टम्स' कहा जाता है। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसी दवाइयां है जिनके लोग व्यसनी बन जाते हैं; जैसे मिर्गी के मरीज के लिए इस्तेमाल होने वाली दवा बारबिट्यूरेटस (फिनोबारिबिटोन), नींद लानेवाली स्लीपिंग पिल्स और चिंता कम करने वाली दवाइयां (ट्रैंक्विलाइजर, डाइजापाम, गीर्डीनल, कामपोज, इत्यादि)। ये सारी गोलियां लोग बिना डाक्टरी सलाह ले लेते हैं, जिनका शरीर पर दुष्प्रभाव पड़ता है। इस लेख में कोकीन, हेरोइन, भंग (केनेबिस सेतिवा), हशीश, एल. एस. डी., सिलो साइबिन, हस्पीरीन, फिनाइलब्युटेजान, मैड्रैक्स, बारबिट्यूरेटस, डाइजापाम, ब्राउनशूगर, केन्टेनील आदि नशीले पदार्थो के बारे में कुछ जानकारी देने का प्रयास किया गया है।

कोकीनः कोकीन प्रकृति से प्राप्त किया गया पदार्थ है। एन्डीज पर्वतीय प्रदेश में करीब 1000 से 300 मी. की ऊँचाई पर एरिथ्रोजाइलोन कोका (ERYTHROXYLON COCA) के पौधे होते हैं। 1860 में जर्मनी के एलबर्ट नेदमन ने उनकी पत्तियों में से कोकीन का निष्कर्षण किया था। इन पत्तियों में कोकीन की मात्रा 0.6 से 1.8% होती है। स्पेनीश लोग अपनी थकान उतारने के लिए इन पत्तियों को चबा लेते थे। वोन एनरेप ने ऐसा अनुभव किया कि कोकीन को कानमें डालने से कुछ सुनाई नहीं देता था। विलस्टार ने 1898 में कोकीन का बंधारण साबित किया। जिस समय कोकीन उपलब्ध हुई, उस समय दवाओं की दुनिया में एक विचित्र उत्तेजना सी आ गयी। कोकीन एक आल्कालोइड है। एरिथोजाइलोन कोका दक्षिण अफ्रीका के पेरु और ओलिविया में पाये जाते है। कोकीन तैयार करने के लिए सबसे पहले पत्तियों का पाउडर बनाकर उसमें सोडियम कार्बोनेट मिलाया जाता है। बाद में पेट्रोलियम इथर डालकर उसका निष्कर्षण किया जाता है। तब उसको गंधक के तेजाब में रखकर मणिभ रुप में प्राप्त किया जाता है। यह एक रंगविहीन पदार्थ है जो पानी में थोडा सा धुलनशील होता है लेकिन उसका हाइड्रोक्लोराइड पानी में द्राव्य है। कोकीन का रासायनिक नाम मिथाइल एस्टर आफ बेनजोइल

एकगोनीन है। उसमें मुक्त कारबोजिलिक समूह होता है। कोकीन में चार ऐसे कार्बन परमाणु हैं जो एसीमेट्रीक होते है। इसके कारण ये प्रकाशीय सक्रिय पदार्थ हैं। कोकीन में जो प्रभाव दिखायी देता है, उसका कारण है बेन्जोईल समूह इसका प्रयोग करनेवाले इसके खेदार पाउडर के बाष्प को किसी पेपर रोल या दूसरे माध्यम से नाक में लेते थे। नाक की म्यूकस झिल्ली में एकत्र इसकी पर्याप्त मात्रा शीघ्र ही रक्त तक पहुंच जाती है। कोकीन के द्रव - इंजेक्शन भी उपलब्ध हैं। रक्त से इसका संबंध बनते ही दिल की धडकन और रक्तचाप बढ़ जाता है। इसका लगातार प्रयोग करने से म्यूकस झिल्ली प्रभावित होती है और सिरदर्द रहता है। अधिक प्रयोग करनेवालों को यह महशूस होता है कि इनकी खाल के नीचे कीड़े रेंग रहे हैं।

मॉर्फिनः अफीम के पौधों को पापावर सोमनीफेरम कहते है। इस पौधे में फल लगते हैं जो काले और गोल छोटे गोले हैं। इस के रुप में मिलते है। उसका रस निकाल कर और सुखाकर अफीम बनायी जाती है। अफीम में 23 आल्कलोइड होते है, जिसमें से मॉर्फिन एक है। उसकी मात्रा 1.1% होती है। अफीम हमारे देशके कई देहातों में, विशेषकर राजस्थान और गुजरात में, किसान अपने बच्चों को सुलाने के लिए देते हैं और खुद भी तेज धूप में खेतों में काम करने के लिये इसका सेवन करते हैं। वे इस धोखे में रहते हैं कि इससे शरीर में दुगुनी ताकत आ जाती है, लेकिन होता है एकदम उल्टा। बच्चों को अफीम थोड़ीसी ज्यादा चटा दें तो उनकी नींद में ही मृत्यु हो जाती है। मॉर्फिन को फिनान्थ्रीन, ट्रायफिनाइल इथर, पिपरिडिन युक्त संयोजन माना जाता है। इस में से अब मेपिरिडीन , पेथिडिन और मिथेडोन जैसी दवाइयां बनायी जाती है। मॉर्फिन के साथ, अफीम में दो और आल्कलोईड होते हैं; फोडीनिन और थेबेइन ये मिलाकर मॉर्फिन आल्कलोइड के नाम से जाने जाते है। मॉर्फिन का निष्कर्षण मिथिलीन क्लोराइड द्वारा किया जाता है। पहले मिथिलिन क्लोराइड में लाइम जल डाला जाता है, और उसका तापमान 20^0 से. रखा जाता है। इस निष्कर्षण में मॉर्फिन, कोडीनीन और थेसाइन होते है। इसके बाद बैंजीन डालकर निष्कर्षण किया जाता है जिसमें मार्फिन बैंजीन में रह जाता है और कोडीनिन थेसाइन निकल जाते हैं। घोल का तटस्थीकरण करके (pH8.0 रखकर) मॉर्फिन का स्फटिकरण किया जाता है। इस प्रकार जो मॉर्फिन मिलता है वह शुद्ध नहीं होता इसलिए इसको खनिज अम्ल और चारकोल की मदद से परिष्कृत कर लिया जाता है। शुद्ध मॉर्फिन का गलन बिंदु 25^0 से. होता है। पहले मॉर्फिन का उपयोग शल्यक्रिया में रोगी को बेहोश करने के लिए भी किया जाता था।

हेरोइनः मॉर्फिन के साथ एसिटिक एनहाइड्राइड की क्रिया से हेरोइन बनायी जाती है। इसका रासायनिक नाम ड्राईएसिटिल मॉर्फिन है। दवा की दुनिया में यह 1898 में आयी। यह कफ निवारक के रुप में ही प्रयोग की जाती थी। चूंकि यह मॉर्फिन से दस गुना ज्यादा शक्ति वाली है इसलिए यह ज्यादा खतरनाक है। एक किलो शुद्ध हेरोइन की कीमत 5 लाख रुपये होते है, इसलिए हेरोइन की अंतर्राष्ट्रीय तस्करी होती है।

केनेबीस उत्पादः मरिजुआना, डागा, हशीश, गांजा, मेरीजन, रीफर आदि के अतिरिक्त कई ऐसे औषधि उत्पाद हैं जो भारत में उगने वाले भांग के पौधे (केनेबिस सेतिवा) से उत्पादित किये जाते है। इन्हें भांग के पौधों की पत्तियों, फूलों व टहनियों को कुचलकर तैयार किया जाता है। केनेबिस का पौधा दुनिया के हर गर्म मुल्क में पाया जाता है। इसमें मुख्य रुप से डेल्टा-जी-टेट्रा हाइड्रोकेनेबीनोल नामक चिपचिपा पदार्थ होता है। यही रसायन नशा आने का कारण हैं।

हशीशः इस के पौधे की टहनियों के अंत में गाढ़ा, काला, चिपचिपा पदार्थ होता है, जिसे हशीश कहते है। चरस को अरबी भाषा में हशीश कहते है। इसे तंबाकू के साथ मिलाकर लिया जाता है। हशीश तेल नामक ड्रग भी आती है। ये ड्रग बहुत ही सांद्र होती है। इसे निथारने की विधि द्वारा बनाता जाता है। हालांकि हशीश अधिकतर धूम्रपान द्वारा ली जाती है परंतु कभी कभी इसे खाया

भी जाता है। जब इसे खाया जाता है तब उसकी ढाईसे तीन गुना तक अधिक मात्रा की आवश्यकता पड़ते है। इसका प्रभाव शुरु में धीरे धीरे होता है किंतु काफी देर तक रहता है। खाने और धूम्रपान करने के प्रभाव भी बिलकुल अलग-अलग हैं। इसे खाये जाने पर इसके प्रभावों को नियंत्रण में लाना मुश्किल होता है।

गर्द (ब्राउन शूगर): यह केवल नशाकारक नहीं है बल्कि एक प्रकार का जहर है। इसमें हेरोइन की मात्रा 1% से भी कम होती है। इसे बनाते समय कई जहरीली चीजों के अलावा इसमें हेराइन, चूहे मारने की दवा, चूना, साइनेट और कुनेन मिलायी जाती है। यदि कोई आदमी इसे अधिक मात्रा में ले ले तो तुरंत मर सकता है। यह हेरोइन का अशुद्ध स्वरुप है। कई लोग ब्राउन शूगर में 3-5% हेरोईन के साथ जिंक ऑक्साईड, धतुरा के बीज, मेन्डेडस आदि पदार्थों की मिलावट भी करते है।

एल. एस. डी.: ब्राउन शूगर की तरह यह बहुत प्रचलित नहीं है। लेकिन यह भी एक नशीली दवा है। एल. एस. डी. का पूरा नाम लेसरजिंक एसिड डाइथेलमाइड है। इसे इन्जेक्शन के जरीये लिया जाता है। 1938 में स्विट्जरलैंड के दो रसायन शास्त्रियों ने ज्यादा तर लोग मानसिक तनाव कम करने के लिए एल. एस. डी. लेते थे।

सिलसेसाइबिनः सिलसेसाइबिन मैक्सिको व मध्य अमरीका में पाये जाने वाले कुकुरमुत्ते सिलोसाइब मैक्सिकाना का सक्रिय तत्व है, जोकि ईसा से 1800 वर्ष पूर्व जान लिया गया था। सिलोसाइबिन का प्रभाव एल. एस. डी. और मेसकेलिन के बीच का रहता है।

बारबिच्यूरेटसः बारबिच्यूरेट्स दवाएं नींद लाती है सलिए ज्यादातर लोग डॉक्टर से पूछे बिना ले लेते हैं। पिल्स आम तौर पर बारबिच्यूरेटस ही हैं। बारबिच्यूरिक एसिड की शोध बेयर ने की थी। उसमें से वेशेनल दवा बनायी गई जिसका 1903 से इस्तेमाल हो रहा है। वेशेनल का रासायनिक नाम 5-5 डायइथाइल बारबिच्यूरेट्स हैं। बादमें ऐसी कई दवाइयां बनायी गयी हैं। उसमें ल्यूमिनल और सेकोनल ज्यादा इस्तेमाल की जाती है। ल्यूमिनल लेनेसे आधे घंटे में और सेकोनल लेने से 15 मिनिट में नींद आने लगती है। बारबिच्यूरेट्स लेने से श्वसन क्रिया पर असर पडती है और कभी मौत भी हो जाती है। बीटाडायथाइल एमिना इथाइल 2-2 डायाफिनाईल वेलरेट जैसी दवा दूसरी नींद लानेवाली दवा से 37 गुना ज्यादा प्रभावशाली है। किनोबार्बिटोन भी ऐसी नींद की दवा हैं बारबिच्यूरेट्स में यूरिया के स्थान पर गंधक या सल्फर लगाने से वे ज्यादा क्रियाशील बनते है। उसको थायो बारबिटोन कहते है।

ट्रैंक्वलाइजरः ट्रैंक्वलाइजर मानसिक शांति पैदा करते हैं। ज्यादा शक्तिशाली ट्रैंक्वलाइजर गंभीर मानसिक रोगों में काम आते हैं। इनमें क्लोरोप्रामाइमिसिन में प्रोबोमेट पीप्राडोल का ज्यादा इस्तेमाल किया जाता है। ज्यादा समय तक लेने से आदत पड़ जाती है जो स्वास्थ्य के लिए घातक भी बन सकता है।

मैंड्रक्सः मैंड्रक्स का उपयोग एक नशीली दवा की तरह किया जाता है। मैंड्रक्स दो ऐसे रासायनिक तत्वों को मिलाकर बनती है जिसमें से एक सम्मोहन पैदा करता है, तो दूसरा आदमी को निष्क्रिय बनाता है।

एस्पीरीनः एस्पीरीन ऐसी दवा है जो सामान्य तौर पर सिरदर्द और बुखार में ली जाती है। लेकिन ज्यादा मात्रा में इन गोलियों का सेवन करने से अन्य तकलीफें बढ़ जाती है। सिरदर्द के दूसरे कई कारण संभव है। सबके लिये एस्पीरीन नहीं ली जाती है। ज्यादा लेने से नींद की कमी हो जाती है जिससे शरीर को जरुरी आराम नहीं मिलता है। इसलिए बाद में नींद की गोली लेनी पडती है।

कोर्टिसोनः शारीरिक पीड़ा मानव के लिए समस्या है। उसमें रहयूमेटोइड एरेथ्राइटिस और रह्यूमेटोइड ज्वर सामान्य है। कई बार हड़ियों के बीच जो बंध होते हैं उसमें दर्द और सूजन आ जाती है इसके लिये कोर्टिसोन दवाओं का ज्यादा इस्तेमाल करना पड़ता है। इन कोर्टिसोन के बारे में सबसे पहले जानकारी हेन्च अकैर केन्डॉल ने 1949 में दी। लेकिन ज्यादा मात्रा में और ज्यादा समय तक लेने से शरीर में जो खनिज पदार्थ होते है उसके संतुलन में बाधा पैदा होती है। शरीर में सोडियम और पोटेशियम के आयनो के बीच जो संतुलन होता है वो बिगड़ जाता है। इसके कारण शरीर में दूसरी समस्या पैदा हो जाती है। इसके इस्तमाल से नींद में

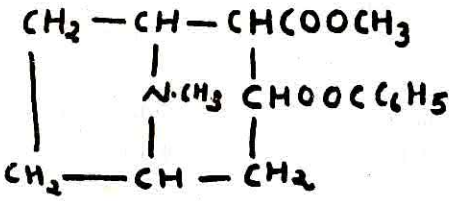

कोकाइन
(–) (COCAINE)
(I)

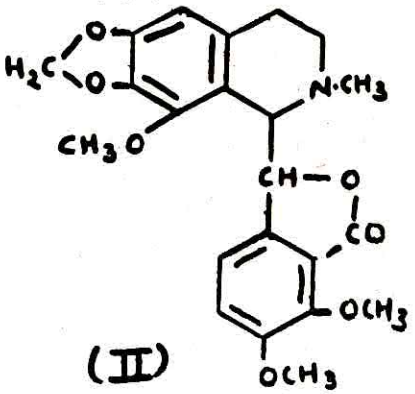

(II)
नारकोटिन
(NARCOTINE)

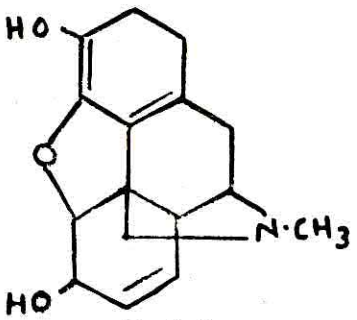

मोर्फिन
(MORPHINE)
(III)

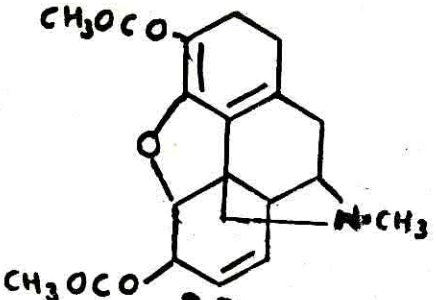

हेरोइन
(IV) (HEROIN)

कुछ ड्रग के रसायनिक सूत्र

कमी आ जाती है। इनमे फिनाइलब्युसोन और ओक्सिपिनब्युटेसोन का उपयोग अधिक होता है।

फिनासाइक्लीडीन (पी. सी. सी.): फिनासाइक्लीडीन या पी. सी. सी. को आमतौर पर ऐंजिडस्ट, क्रिस्टल, होर्स ट्रैंकुलाइन व रोकेट फ्युएल के नाम से जाना जाता है। उत्तरी अमेरिका में नशे के आदी लोगों में यह दवा अब सबसे ज्यादा लोकप्रिय है।

डाइजेपाम, कलारोडाइजेपाकसाइस, फ्लूरेजेपाम, कलारेजेपाम वगैरह वे संश्लेषित नशीली दवाएं है जो रंगीन गोलियों, सीरप और इंजेक्शन के रुप में बनायी जाती है और चिंता, तनाव व अनिद्रा रोग के लिए दी जाती है। ये पदार्थ कम नशीले है तथा काफी सुरक्षित भी है। लेकिन ज्यादा समय तक इनका उपयोग करते रहने से व्यक्ति मनोविकृति तथा विस्मरण का शिकार हो जाता है।

रोगी के ओपरेशन के दौरान बेहोश करने के लिए ऐनेस्थेटिक दवाएं दी जाती है। इस प्रकार की एक दवा है, ''फेन्टेनील'' अमरीका के डा. तालबोट का कहना है कि ''फेन्टेनील'' दवा मोर्फिन से सौ गुनी और हेराइन से बीस से चालीस गुनी ज्यादा असरदार है। इसके अलावा सफेन्टेनील और लोफन्टेनील जैसी दवाओं को नशे के लिए इस्तेमाल किया जाता है। बंबई महानगर में दो लाख नशेबाज मौजूद हैं, जो ब्राउन शूगर के व्यसनी बन चुके है। नशा करने वालों में युवाओं की संख्या सबसे अधिक है। जिसकी उम्र औसतन 15 से 30 वर्ष के बीच है। इस ढंग का व्यसन करने वालों में स्त्रियों की संख्या भी काफी है। ब्राउन शूगर तीन तरीके से लिया जाता है; एक सिगरेट में तंबाकू निकाल कर ब्राउन शूगर डालकर और मिलाकर, दूसरा नींबू के रस में मिलाकर इंजेक्शन लेना और तीसरा चांदी के छोटे कागज में रखकर नीचे से गरम करके नशा करने वालों के दिमाग की नशें इससे बुरी तरह आहत होती हैं। उसका किसी काममें मन नहीं लगता, भूख मर जाती है, वजन तेजी से गिरने लगता है, साथ ही उसे भयंकर कब्ज भी हो जाती है। मूत्र की मात्रा कम और गंदी हो जाती है। और लीवर पर भी उसका बुरा असर पड़ता है। इससे टी. बी. होने की संभावना बहुत रहती हैं। गर्दन और हाथ पैर कांपने लगते है। जोडों में दर्द होता है। हृदय से संबंधित कई रोग उसे जकड लेते है। आंख की पुतली का आकार छोटा हो जाता है। स्त्रियों के मामले में तो यह और भी घातक होता है। ब्राउन शूगर ज्यादा लेने से स्त्रियों को सबसे पहले उनका मासिक धर्म बंध हो जाता है। और प्रजनन शक्ति समाप्त हो जाती है। गर्भावस्था के दौरान लेने से नवजात शिशु के बचने की संभावना कम हो जाती है। यदि वो बच भी गया तो विकलांग होगा। बाहर आने के बाद ऐसे बच्चे को कोल्डटर्की हो जाती है। उसका विकास पूरी तरह से नहीं होता। महिलाओं में गर्भपात की दर बहुत ज्यादा होती है। कोकीन के प्रभाव से रक्तपात तेजीसे उठता-गिरता है और इस रोग में शिशु के मस्तिष्क तक पहुंचने वाली आक्सीजन कभी भी बंद हो सकती है या बच्चे को दिल का दौरा पड़ सकता है। इससे बच्चा सदा के लिए विकलांग या विक्षिप्तकर हो सकता है। डाक्टर शेरेल हावर्ड कहते है '' मैं समझता हूं कि इन दवाओं का असर आगे चलकर खुलेगा। मैं बड़ी आसानी से उस दुनिया की कल्पना कर रहा हूं जिसमें मानसिक रुप से अविकसित बच्चों की फौज खड़ी होगी। आश्चर्य नहीं कि कल को अचानक ही हम पायें कि अधिक से अधिक बच्चे या तो मां के पेट में ही मर रहे हैं या मरे हुए ही पैदा हो रहे हैं।''

अब नारकोटिक ड्रग्ज एंड साइकोट्रोपिक सब्सटेंसेज एक्ट 1985 में पहली बार इस तरह के अपराध करने वाले को एक लाख रुपये जुर्माना तथा 10 वर्ष का सश्रम कारावास होगा। अपराधी यदि दूसरी बार पकड़ा गया तो उसे कम-से कम 16 वर्ष की कैद और 2 लाख रुपयों का जुर्माना होगा। परंतु जब तक इस समस्या को सामाजिक कारणों के परिप्रेक्ष्य में नहीं सोचा जाएगा सरकारी एक्ट के परिणाम वांछित दिशा में नही होंगे। मानव जाति के हित में इस प्रश्न पर गंभीर चिंतन की आवश्यकता है।

उच्च रक्त चाप

राजेन्द्रकुमार नायक
मारकोना (आर. एन. एच. स्कूल के सामने)
सिमूलिया, बालासोर-756126 (उड़ीसा)

मनुष्य में निम्न की अपेक्षा उच्च रक्तचाप सहन करने की क्षमता अधिक होती है, उसी कारण डाइस्टोलिक रक्तचाप 70 से नीचे जाते ही थकान, कमजोरी आदि लक्षणों के कारण इसका निदान तुरन्त हो जाता है, परन्तु सिस्टोलिक रक्तचाप 120 से बढ़ कर 160 या इससे अधिक होने पर ही सरदर्द आदि लक्षण महसूस किये जाते हैं इस बीच अधिक रक्तचाप शरीर पर अपना कुप्रभाव धीरे-धीरे, परन्तु निश्चित रुप में डालता रहता हैं आज के तनाव और दौड़-भाग भरे जीवन में उच्च रक्तचाप (हाइपरटेन्शन) किसी को भी हो सकता है। इसके सम्बन्ध में महत्वपूर्ण जानकारी प्रस्तुत है।

रक्त चाप रक्त का वह दबाव है जो शरीर की रक्त नली, धमनी तथा शिरा की दीवाल के विरूद्ध होता है। रक्त चाप के बिना रक्त शरीर में प्रवाहित नहीं हो सकता। यह दबाव हृदय से लगातार रक्त प्रवाहित होने से तथा छोटी पतली शिराओं-धनियों के प्रतिरोध से उत्पन्न होता है।

मानव जाति में रक्त चाप क्षण-क्षण में बदलता रहता है। यह रक्त चाप बढ़ जाता है जब हम उत्तेजित या तनाव में होते है और घट जाता है जब हम आराम या सोयी अवस्था में होते हैं। वह व्यक्ति जो रक्त चाप से पीडित होता है, उसका रक्त चाप बढ़ता जाता है और हमेशा बना रहता है। इस दशा को ''उच्च रक्त चाप'' या ''हाइपरटेन्शन'' कहते है। रक्त चाप मर्करी स्तंभ की ऊंचाई में नापते है, जैसा कि नीचे दिखाया गया हैं:

चाप	सिस्टोलिक (मि.मी.मर्करी)	डाइस्टोलिक (मि.मी. मर्करी)
सामान्य	110-125	80-90
अन्य	130-150से ऊपर	90-100 से ऊपर
निम्न	100 से नीचे	60 से नीचे

रक्त चाप एक ऐसी अवस्था है, जिसमें सिस्टोलिक चाप 140-150 या इसके अधिक और या डाइस्टोलिक चाप 90-95 या इससे अधिक होता है। इस को केवल बार-बार मापने ही जाँचा जा सकता है। क्षण भर के लिए बढ़े हुए रक्त चाप को उच्च रक्त चाप नहीं माना जाता है, अतः चिकित्सक अधिक समय तक बार-बार रक्त चाप मापते है ताकि उच्च रक्त चाप के बारे में सही जानकारी मिल सके। उच्च रक्तचाप में सिल्टोलिक और डाइस्टोलिक दोनों पर चाप बढ़ जाया करते है, लेकिन यह हमेशा नहीं होता है। कुछ लोगों में खासकर अधिक आयु वाले लोगों में सिस्टोलिक चाप, डाइस्टोलिक चाप की अपेक्षा अधिक हो जाती है। ऐसी स्थिति में डाइस्टोलिक चाप साधारण या लगभग साधारण रहता है। हाइपरटेन्शन दो प्रकार के होते है, पहला जिसे एसेन्शियल प्रायमरी या बिनाइन या हाइपरटेन्शिव वेस्कुलर कंडीशन कहते है, और दूसरा जो सेकंडरी या हाइपरटेन्शिव कार्डियोवेस्कुलर कंडीशन नाम से जाना जाता है। बिना स्पष्ट कारण के जिसे एसेन्सियल हाइपरटेन्शन है, उसे निश्चित ही उच्च रक्त चाप है। यह सेकेन्डरी प्रकार की तुलना में अधिक साधारण होता है। यह बात स्पष्ट नहीं हो सकी है कि एसेन्सियल हाइपरटेन्शन के संयोग अधिक क्यों होते हैं, लेकिन कुछ तथ्य, जैसे वंशानुगत, जीवन शैली, अतिभार, लवण का अधिक उपभोग आदि इस रोग में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हुए देखे जाते हैं। प्रायमरी हाइपरटेन्शन धारणतया मध्यम आयु वाले लोगों में हुआ करता है। इसे दवा की मदद से कम किया जा सकता है। सेकेंडरी हाइपरटेन्शन कई कारणों से हो सकता हैं; जैसे गुर्दा रोग, हारमोन्स में असंतुलन, ओरल कान्ट्रासेप्टिव लेने

पर शरीर में परिवर्तन, गर्भ-धारण करना आदि। गुर्दा रोग में, गुर्दे में रक्त की आपूर्ति में कमी हो जाती है और यही इसका कारण है।

गुर्दा एक रसायनिक पदार्थ रक्त में स्रावित करता है, जिससे रक्त चाप बढ़ना स्वाभाविक है। कभी-कभी न्ड्रोक्राइन ग्रंथि में ट्यूमर होने से रक्त चाप बढ़ जाता है। इसमें भी ट्यूमर से रासायनिक पदार्थ स्राव होने से रक्त चाप बढ़ जाता है। अधिकांशतः सेकंडरी हाइपरटेन्शन धीरे-धीरे कई सालों तक बढ़ता जाता है। इस खतरनाक दशा को 'मेलिगनेंट हाइपरटेन्शन कहते है। प्रारंभ में इस रोग को पहचाना नहीं गया था, फलतः मृत्यु की संख्या अधिक थी, लेकिन आज यहां अच्छी तरह से जान लिया गया है और यहां तक इसका दवा से सफलतापूर्वक उपचार भी किया जा सकता है। इस प्रकार का रोग चाहे प्राइमरी हो या सेकंडरी, खासकर धूम्रपान करने वालों में देखा जाता है।

अमेरिका के हार्ट एसोशिएशन द्वारा इस रोग को 'द साइलेंट किलर' कहा गया है क्योंकि अधिकांश लोग किसी लक्षण का अनुभव नही कर पाते हैं। जैसे भी हो, जिसे अत्यधिक उच्च रक्त चाप होता है, उसे लगतार सरदर्द, चक्कर, थकावट, तनाव और छोटी सांस हुआ करती है। ये सब लक्षण अन्य कई कारणों से भी हो सकते हैं। अतः किसी व्यक्ति को रक्त चाप की जांच करा लेनी चाहिए।

उच्च रक्त चाप का वर्गीकरण

उच्च रक्त चाप	सिस्टोलिक (मि.मी. मर्करी)	डाइस्टोलिक (मि.मी. मर्करी)
निम्न-उच्च	140-150	90-95
मध्यम-उच्च	160	95-105
अधिक-उच्च	180-190	115-120
अत्यधिक-उच्च	200-300	130-160

उच्च रक्त चाप के कारणः- उच्च रक्त चाप होने कारण जानने के लिए लगातार काफी समय से शोध कार्य किया जा रहा है लेकिन इसका अभी तक कोई निश्चित उत्तर नहीं मिल सका है। उच्च रक्त चाप के एक नहीं अनेक कारण हैं। अधिकांश चिकित्सक यह वश्वास करते है कि इस रोग का सबसे महत्वपूर्ण तथ्य वंशानुगत गुण है। इसके अन्य कारण है, धमनियों में कठोरता, तनाव, वातावरण, व्यक्तित्व, अति लवण का उपभोग और अतिभार।

(i) **वंशानुगतः** यह माना गया है कि वंश उच्च रक्त चाप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ऐसा देखा गया है कि हाइपरटेन्शन के कई रोगी ऐसे हैं जिसके माता-पिता में से कम-से कम एक को उच्च रक्त चाप अवश्य है। अनेक देशों में अध्ययन से पता लगाया गया है कि जब पिता या माता में से एक को हाइपरटेन्शन का रोग है तो इस रोग के 25% संतान में होने की आशा की जाती है। जब दोनों माता-पिता को यह रोग है तो यह 90% बच्चों में होता है। अनुभवी चिकित्सकों का कहना है कि यह वंशानुगत उच्च रक्त चाप मध्यम आयु में ही प्रकट होता है।

(ii) **वातावरण और व्यक्तित्वः-** किसी व्यक्ति की भावना और तनाव के प्रति झुकाव अकसर उसे उच्च रक्त चाप से प्रभावित करते हुए देखा गया है। कुछ लोग अपनी जिंदगी काफी तनाव और चिंता में व्यतीत करते हैं। अन्य तेज भावनाएं , जैसे भय, चिंता, क्रोध या कष्ट उच्च रक्त चाप के बढ़ा सकती है, लेकिन चाप साधारणतया सामान्य हो जाता है जब तनाव हट जाता है। कुछ लोगों में तनाव हट जाने पर भी रक्त चाप में कमी नहीं होती है। इन लोगों में रक्त चाप लगातार बढ़ता जाता है और धीरे-धीरे उच्च स्तर पर टिका रहता है। ऐसा पाया गया है कि ड्राइविंग, जबरदस्ती आवश्यकता के समय तेज भावना, बैचैनी और यहां तक कि उत्तेजना किसी-किसी व्यक्ति में हाइपरटेन्शन को जन्म दे देती हैं। दूसरी चीज जिसका योगदान इस में है, वह है महत्वाकांक्षा और प्रतियोगिता और शायद प्रतियोगिता में तेज काम करना पड़ता है, चाहे खेल में,

काम में हो या पढ़ाई आदि में। साधारणतः सीधे-सादे शांत व्यक्ति में हाइपरटेन्शन नहीं पाया गया है।

(iii) **अति लवण का उपभोगः-** मेडिकल शोधकर्ताओं के बीच एक विवाद यह पाया गया है कि कुछ का कहना है, उच्च रक्त चाप का लवण से कोई संबंध नहीं है, जबकि कुछ का कहना है कि अत्यधिक लवण के उपभोग का उच्च रक्त चाप से सीधा संबंध है। हालांकि इसमें स्पष्ट निष्कर्ष नहीं निकला है, लेकिन संसार के विभिन्न भागों में अध्ययन से यह मिला है कि वह समूह जो अत्यधिक लवण का उपभोग करते हैं, उसमें उच्च रक्त चाप प्रायः अधिक रहता है, जैसे जापान और दक्षिण कोरिया में उच्च रक्त चाप की संख्या कहीं अधिक है क्योंकि वहां मांस और मछली के साथ लवण का अत्यधिक उपयोग होता है। मांस और मछली लवण से संरक्षित की जाती हैं। जापान का वह क्षेत्र, जहां लवण का उपभोग बहुत कम है, वहां के निवासियों में निम्न रक्त चाप पाया जाता है। कुछ मुख्य बातों से उच्च रक्त चाप में कमी लाई जा सकती है;(i) जहां तक संभव हो भोजन के साथ अतिरिक्त लवण का उपभोग नहीं करना चाहिए। (२) अत्यधिक लवण से संरक्षित किया भोज्य पदार्थ, जैसे मटर, काजू, मछली, मांस आदि से दूर रहना चाहिए। (३) अचार, चटनी में भी लवण की मात्रा अधिक होने के कारण इनका कम मात्रा में उपभोग करना चाहिए।

(iv)**अतिभारः-** इसका अभी तक कोई गवाह नहीं मिला है। कि अतिभार वाले व्यक्ति को उच्च रक्त चाप हो जाता है, लेकिन प्रायः ऐसा पाया गया है कि जो व्यक्ति अधिक वजनदार है उसे यह रोग है। अतिभार वाले व्यक्ति को अच्छी तरह से सावधानी बरतनी चाहिए ताकि इसके लिए यह रोग खतरा न हो जाए।

(v) **तनावः-** जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि तीव्र भावनाएँ, जैसे भय, चिंता, क्रोध तनाव उत्पन्न करते हैं। रक्त चाप बढ़ जाता है जब तनाव होता है और घट जाता जब तनाव कम होता है। यह भी साक्ष्य मिल चुका है कि तनाव और चिंता रक्त में कोलेस्टेरोल में वृद्धि कर देती है। अमेरिका में अध्ययनानुसार छात्रों में परीक्षा के पहले रक्त में कोलेस्टेरोल अधिक रहता है, जबकि परीक्षा के बाद कम हो जाता है।

(vi) **आयुः-** लगभग सभी प्रकार का हाइपरटेन्शन 65% 45-60 वर्ष आयु वाले लोगों में पाया जाता है। इस वर्ग में यह रोग होने का कोई वास्तविक कारण जाना नहीं जा सका है। साधारणतः अधिक उम्र में उच्च रक्त चाप पाया गया है, परन्तु सभी अधिक उम्र वालों में उच्च रक्त चाप नहीं होता है। अतः यह परिणाम आयु के कारण नहीं है। पुरुषों में50 वर्ष तक हाइपरटेन्शन बढ़ता जाता है और इसके बाद गिर जाता है, लेकिन स्त्रियों में उच्च रक्त चाप बढ़ता जाता है। पुरुषों की तुलना में इस रोग से पीडित स्त्रियों की संख्या कहीं अधिक है।

(vii) **रक्त चाप और धमनी की कठोरताः-** धमनियों के कठोर होने पर रक्त चाप बढ़ता है और यदि उपचार न हो तो आगे यह खतरनाक हो सकता है। आर्टेरियोस्केलोरेसिस रोग में धमनियों की कठोरता प्रारंभिक अवस्था से ही होती है जवानी में धमनियों में परिवर्तन आरंभ हो जाता है और धमनी की पतली दीवाल पर चर्बी जैसा पदार्थ या कोलेस्टेरोल जमता जाता है। इसे हम आर्थेरोमेटीसिस कहते है। धमनी के अंदर दीवाल चर्बीय पदार्थ से ढक जाती है, फलतः छोटे उठी हुइ चर्बी, केलसियम के साथ जम जाती है। इस के कारण धमनी और कठोरता का रूप धारण कर लेती है। रक्त की प्रवाह नली में कम होना स्वाभाविक है। कभी-कभी यह जमा पदार्थ इतना मोटा हो जाता है कि धमनी में रक्त का प्रवाह पूरी तरह बंद हो जाता है। इस परिस्थिति में यह खतरनाक होता है।

(viii)**अल्कोहल का सेवन करनाः-** यह बात सत्य है कि अत्यधिक अल्कोहल का सेवन करने से उच्च रक्त

चाप की सृष्टि होती है। यद्यपि अल्कोहल का हृदय रोग से सीधा संबंध नहीं है, फिर भी इसमें कोई संदेह नहीं है कि अत्यधिक पान करने वाले, खास कर जो दिन में 3-4 बार पीते है, उच्च रक्त चाप का शिकार हो जाते है। अल्कोहल में अधिक कैलोरी होने की वजह से मोटापा हो जाता है और उच्च रक्त चाप बढ़ जाता है। साथ-साथ, अल्कोहल का सेवन करने वालों पर दवा का प्रभाव बहुत कम हो जाता है। इस प्रकार उसका उपचार बड़ा कठिनकर है।

(ix)**धूम्रपानः-** अधिकांश चिकित्सकों का कहना है कि बीमारी और शीघ्र मृत्यु का बहुत कारण धूम्रपान है। तम्बाकू या सिगरेट में निकोटीन एक प्रमुख प्रदूषण पदार्थ है। एक ग्राम तम्बाकू में सिर्फ 0.3% निकोटीन होती है इसके धुएँ में 5-9 मि. ग्राम निकोटीन होती है। जबकि फिल्टर का प्रयोग निकोटीन अलग करने के लिए किया जाता है, लेकिन इसका केवल एक छोटा भाग ही अलग होता है। धूम्रपान का प्रभाव हृदय गति में वृद्धि, रक्त चाप में वृद्धि तथा प्रत्येक धडकन में हृदय से अधिक रक्त निकलता है। इससे हृदय को अधिक काम करना पड़ता है। रक्त के लाखों छोटे-छोटे कणों को रक्त प्लाविका कहते हैं। ये प्लाविकाएं निकोटीन से नष्ट हो जाती है और धमनी की कठोरता इसी का फल है। यही कारण है कि हृदय गति में अवरूद्धता आ जाती है। निकोटीन तांत्रिक कोशिकाओं से एक रासायनिक पदार्थ का स्राव करती है जिसे कटेकोलागाइन्स कहते है। प्रायः सभी कोशिकाओं में कटेकोलागाइन्स होता है, लेकिन इसका अधिक स्राव होने पर हृदय एवं रक्त नली पर विपरीत प्रभाव डालता है। यह रासायनिक पदार्थ हृदय का काम और ऑक्सिजन के खर्च में वृद्धि कर देती है पिट्रेसिन नामक रासायनिक पदार्थ के स्राव में भी निकोटीन वृद्धि कर देती है, जो हृदय की धमनी में संकुचन लाती है जिससे रक्त चाप में वृद्धि होती है। भारत के अनेक शहरों एवं गाँवों में सिगरेट, बीडी और तम्बाकू का उपयोग किया जाता है। यह सब हानिकारक हैं। अधिक रक्त चाप इनके उपयोग का ही परिणाम है।

(x) **चाय और कॉफीः-** कभी-कभी गुर्दे में कमजोरी होने पर रक्त चाप में वृद्धि होती है। यह दशा अधिक चाय या कॉफी के प्रयोग का परिणाम है। चाय या कॉफी की अधिक मात्रा गुर्दे की सूक्ष्म बनावट में गड़बड़ी लाती है, जिससे रक्त चाप में वृद्धि हो जाती है। चाय, खासकर बिना दूध की हानिकारक हैं जब हम थोडी मात्रा में चाय या कॉफी का उपभोग सावधानीपूर्वक करते है, तो यह लाभकारी है, अन्यथा रक्त चाप में वृद्धि करने को यह प्रेरित करती है।

(xi) **गर्भ धारण करना और रक्त चापः-** सभी गर्भवती महिलाओं को उच्च रक्त चाप नहीं होता है। वास्तव में चिकित्सक यह नहीं जानते है कि कुछ गर्भवतियों को उच्च रक्त चाप क्यों होता है और कुछ को नहीं। जैसा की ज्ञात है कि उच्च रक्त चाप गर्भवती माँ और गर्भ में पल रहे बच्चे दोनों के लिए खतरनाक है। गर्भ-धारण करने की साधारण दशा में प्रथम तीन महीने में रक्त चाप में कोई परिवर्तन नहीं होता है, अगले तीन महीनों में रक्त चाप में वृद्धि हो जाती है और अंतिम तीन महीनों में रक्त चाप में गिरावट आ जाती है तथा रक्त चाप साधारण हो जाता है। जैसा भी हो, गर्भ धारण करने वाली सभी महिलाओं को समय-समय पर तथा नियमित सावधानी बरतने के लिए चिकित्सक से जाँच करनी चाहिए तथा उनकी सलाह का अनुसरण करना चाहिए। गर्भवती महिला के रक्त चाप में रक्त चाप की वृद्धि के तीन कारण होते है, (1) गर्भ धारण करने के कारण रक्त चाप में वृद्धि हो गयी हो (2) वह पहले से ही रक्त चाप से पीड़ित हो(3) गर्भ के टोक्साएमिया के कारण रक्त चाप में वृद्धि हो। टोक्साएमिया एकदशा है जिसमें जीवाणु के विष से रक्त में लवण, शरीर के जल में वृद्धि, मूत्र में प्रोटीन, एड़ी तथा अंगुलियों का फूल जाना होता है। टोक्साएमिया माता और बच्चा दोनों के लिए खतरनाक है, अतः

यथाशीघ्र उपचार के लिए चिकित्सालय ले जाना चाहिए। चिकित्सक को चाहिए की एक गर्भवती महिला को एक्स-रे जाँच से दूर रखे तथा जहाँ तक संभव हो उसे कम से कम दवा का उपयोग करने दे, और ऐसी दवा दें जिससे उसकी सुरक्षा हो और लवण में कमी आये।

छाती दर्दः- कभी-कभी कुछ व्यक्ति छाती में दर्द अनुभव करते है। इस दर्द के कई कारण हो सकते है। साधारणतः पेट में गैस के कारण दर्द होता है। छाती दर्द को लोग अक्सर अज्ञात से हृदय अवरोध समझ लेते है। यह दर्द हालांकि छाती के बाइ तरफ ठीक हृदय अवरोध के दर्द जैसा लग सकता है, लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं भी होता है। यह दर्द थकावट या विश्राम की अवस्था में हो सकती है। पेट में गैस जाने या अपच होने से हृदय गति अवरूद्ध नहीं होती है। कभी-कभी हृदय गति अवरोध के दर्द को भी लोग अपच का दर्द समझकर ध्यान नहीं देते हैं। सबसे अच्छा उपाय यह है कि छाती में किसी भी प्रकार की दर्द क्यों न हो, तुरंत चिकित्सक से सलाह लेनी चाहिए।

उपचार में दवा का प्रयोगः- आजकल उच्च रक्त चाप के लिए कई प्रभावशाली दवाओं का प्रयोग किया जाता है। प्रमुख दवाओं को छः भागों में बाँटा गया है।

(1) **डाइयूरेटिक्सः-** इन अभिकारकों से वे प्रमुख दवाएँ बनती हैं जो गुर्दे से लवण और जल की मात्रा को मिलाकर मूत्र बढ़ा देती है। डाइयूरेटिक्स शरीर से अत्यधिक सोडियम को भी निकाल देता है जिससे इसकी मात्रा घटने पर प्लाज्मा की मात्रा घट जाती है, फलतः अप्रत्यक्ष रूप से रक्त चाप में कमी आ जाती है। कुछ दवाएँ क्लोरोथाइजाइड, हाइड्रोक्लोरोथाइजाइड, बेन्जोथाइजाइड, क्वीनइथाइजोन, स्पाइरोजोलेक्टीन आदि नामों से जानी जाती है।

(2) **सेंट्रल ड्रग्सः-** ये दवाएँ मस्तिष्क को नियमित करने वाली क्रिया पर सीधा प्रभाव डालकर रक्त चाप में कमी लाती है। इनमें राडओलकिया, अल्केलॉएड्स और मिथाइलोपोडा जैसी दवाएँ आती है।

(3)**वेसोडाइलेटर्सः-** यह दवा रक्त नली को फैला देती है जिससे रक्त प्रवाह में वृद्धि होती है और रक्त चाप भी कम हो जाता है अर्थात इस का सम्बन्ध सीधा रक्त नली से है। ऐसी कुछ दवाएँ प्रजोसीन , हाइड्रालाजीन, मीनोजाइडील आदि हैं।

(4) **बीटा ब्लॉर्कर्सः-** आजकल उच्च रक्त चाप का उपचार बीटा-ब्लॉकर्स द्वारा किया जाता है। इसका प्रयोग डाइयूरेटिक के साथ करने पर लाभकारी होता है। बीटा ब्लाकर्स एड्रेनालीन हारमोन्स के कार्य बंद कर देते हैं जिससे रक्त चाप में कमी आती है। इनकी कुछ दवाएँ प्रोपानोलोल, नोडीलोल, ट्राइमोलोल आदि हैं।

(5) **एड्रेनरजिक्सः-** एड्रेनरजिक्स दवाएँ मस्तिष्क से रक्त नली में संचार कर लेती हैं। इसमें गुआनथीडीन और बेथाइडीन जैसी दवाएँ आती हैं। इन दवाओं का प्रयोग सावधानीपूर्वक करना चाहिए क्योंकि ये शक्तिशाली दवाएँ हैं।

(6) **ट्रैंक्वीलाइजर्स और सीडेटिव्सः-** हल्के हाइपरटेन्शन के लिए ट्रैंक्वीलाइजर्स और सीडेटिव्स को प्रयोग में लाया जाता है। इनसे रक्त चाप कुछ सप्ताहो में कम हो जाता है। एमोबारबीटाल, क्लोराल हाइड्रेट, फेनोबारबीटाल, क्लोरजीपेट आदि दवाएँ इस वर्ग में आती हैं।

बचाव और उपचारः-(1) अपने आप को मदद करना, यह प्रथम बचाव और उपचार है,

(2) यदि आपका वजन अधिक है, तो इसे घटाने की प्रयास करें,

(3) धूम्रपान यथासंभव त्याग देना चाहिए,

(4) साधारणतः अपने भोजन में लवण का प्रयोग कम करना चाहिए,

(5) अत्यधिक श्रम और जल्दबाजी कम करें,

(शेष पृष्ठ 42 पर)

रबी की प्रमुख फसलों के रोग एवं उपचार

वीरेन्द्रकुमार सिंह (शोध छात्र)
कवक एवं पादप रोग विज्ञान
वानस्पतिक उच्चानुशीलन केंद्र
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221005

भारतीय कृषि-प्रक्रिया में दो मौसम, वर्षा और शीत, प्रमुख फसलों के उत्पादन काल हैं। इन दो मौसम में उगाई जाने वाली फसलों को क्रमशः खरीफ और रबी की फसलें कहा जाता है। रबी मौसम की फसलें जैसे गेहूं, चना, मटर, सरसों आदि में लगने वाले रोगों और बचाव पर इस लेख में प्रकाश डाला गया है।

गेहूं

1. गेहूं का सेहूं (ऐमइना ट्रिटिसाइ):

पहचानः- यह रोग सूत्रकृमि (नैमटोड) के द्वारा फैलता है। सूत्रकृमि जनित काले दानों (गाल्स) को तोड़ने पर उनमें से असंख्य रूई के समान सूत्रकृमि दिखाई देते हैं जो पानी में डालने पर कुछ देर बाद गतिशील अवस्था में स्पष्ट देखे जा सकते हैं।

हानिः यह रोग सूत्रकृमि द्वारा पौधों के अग्रभाग में पत्तियों का रस चूसने के कारण तथा फूलों में सूत्रकृमि के प्रवेश के कारण होता है। पत्तियां टेढी- मेढी मुड़ी हुई निकलती हैं। बालियां छोटी होती हैं और देर तक हरी बनी रहती हैं। दोनों के स्थान पर काले-काले गाल्स बन जाते हैं। इन्हीं गाल्स सें सुसुप्त अवस्था में पड़े हुए सूत्र कृमि ही नई फसल को पुनः संक्रमित करते हैं।

रोकथामः-

(i) इस रोग से बचाव हेतु से बचाव हेतु स्वस्थ बीज ही बोना चाहिये। रोग मिश्रित गेहूं के बीज को 5 प्रतिशत नमक के घोल में डुबोकर रोगग्रस्त दानों से स्वस्थ बीज को अलग कर लेना चाहिये तथा स्वस्थ बीज को पुनः 3-4 बार पानी से धोलकर सुखा लें। गेहूं के रोगग्रस्त दानों को जलाकर नष्ट कर देना चाहिए। अन्यथा इनसे पुनः संक्रमण की संभावना रहती है।

(ii) प्रमाणित बीजों को बोना चाहिये।

(iii) रोगी पौधों को इस प्रकार खेत से निकाल लेना चाहिए कि रोगी दाने खेत में न गिरें तथा उन्हें तुरन्त नष्ट कर देना चाहिए।

(iv) गेहूं की रोग रोधी किस्में ही बोना चाहिए।

2. पहाडी बन्ट अथवा दुर्गन्धयुक्त कन्डुवा (टिलेशिया कैरीज) एवं टिलेशिया फोडाः

पहचानः यह गेहूं का एक मुख्य रोग है तथा शीतल जलवायु वाले क्षेत्रों में अधिक उत्पन्न होता है तथा यह रोग कवक के द्वारा फैलता है। रोग-ग्रस्त बालियाँ स्वस्थ पौधों की अपेक्षा भिन्न दिखाई देती हैं। बालियों में दाने कन्डुवा के बाल्स में बदल जाते हैं। पक जाने पर इनका रंग भूरा हो जाता है। इनके अन्दर फफूंदी के असंख्य काले बीजाणु भरे रहते हैं, तथा इनसे सड़ी मछली की दुर्गन्ध आती है। खलिहान में गहाई के समय बीजाणु गेंदे फट जाती है और बीजाणु स्वस्थ बीजों की सतह से चिपक कर उनको संदूषित कर देतें हैं। बीजाणु मृदा में भी जीवित रहते हैं।

हानिः पूरी बाल में दाने कन्डुवा के बाल्स में बदल जाते हैं और स्वस्थ दाना नही बन पाता है।

रोकथामः

(i) एक प्रतिशत कार्बनिक पारायुक्त कवकनाशी जैसे एग्रोसान जी. एन. सेरेसान इत्यादि द्वारा २ ग्राम/किलो बीज के हिसाब से शुष्क बीज पर उपचार करना चाहिए।

(ii) मृदोढ़ संक्रमण को 3 वर्ष के फसल चक्र द्वारा रोका जा सकता है।

(iii) रोग रोधी किस्मों की बुवाई करना चाहिए।

3. करनाल बंट (नियोवोसिया इंडिका):

पहचानः यह रोग कवक के द्वारा फैलता है। इस रोग को गेहूं का कैंसर कहा गया है। रोग के लक्षण उस

समय तक नहीं दिखाई पड़ते जब तक कि बालियों में दानें नहीं बन जाते हैं। ऐसे रोग ग्रसित पौधे की सभी बालियों में संक्रमण नहीं होता है। तथा एक संक्रमिक ाली में कुछ दाने ही बंटयुक्त होते हैं। सामान्यतः दाने आंशिक रूप से काले चूर्णिल समूह में बदल जाते हैं, जो बीजाणुओं से बनाता है। यह रोग बीजोढ़ होने के साथ मृदोढ़ भी होता है।

हानिः बाली में दाने रोग ग्रसित होकर काले हो जाते हैं एवं पूर्णतया नष्ट हो जाते हैं। आंशिक रूप से ग्रसित दानों के कारण पैदावार का मूल्य गिर जाता है। करनाल बंट में सभी दाने ग्रसित नहीं होते जबकि पहाड़ी बंट में बाली के सभी दाने ग्रसित हो जाते हैं।

रोकथामः

(i) सदैव प्रमाणित बीजों को बोना चाहिए।

(ii) बीज को बेनलेट, बाविस्टिनल, सेरेसान, एग्रोसान जीएन एवं थाइराम जैसे ककवकना शियों द्वारा 2.5 ग्राम/किलो बीज के हिसाब से उपचारित करके समाप्त किया जा सकता है।

(iii) रोग रोधी किस्मों का चयन करना चाहिए।

4. अनावृत कण्डुवा (अस्टिलैगो ट्रिटिसाइ):

पहचानः यह गेहूं का प्रमुख रोग है तथा भारत में गेहूं उगाने वाले सभी मैदानी क्षेत्रों के साथ-साथ पहाड़ी क्षेत्रों में भी पाया जाता है। इस रोग को फैलाने वाले काले कवक होते हैं। इस रोग में स्वस्थ बालियों के स्थान पर रोगी बालियां निकलती हैं जो प्रारंभ में सफेद रंग की पतली झिल्लीसे धिरी रहती हैं, जो शीध्र ही फट जाते हैं। और फफूंदो के काले बीजाणु हवा में उड़ जाते हैं। और नग्न मध्य वृन्त ही बच रहता है।

हानिः पूरी बाली कण्डुवा में बदल जाती है और उसमें कोई दाना नहीं पड़ता है।

रोकथामः

(1) प्रमाणित बीज बोयें।

(ii) कवकनाशी से बीज को उपचारित करें।

(iii) रोगी पौधे को खेत से उखाड़कर जला देना चाहिए।

(iv) रोग रोधी किस्मों की बुवाई करना चाहिए।

(v) बीज की मई के अन्तिम सप्ताह अथवा जून के प्रथम सप्ताह में 4 घंटे तक प्रातः 8 बजे से दोपहर 12 बजे तक ठंडे जल में भिगोने के पश्चात 4 घंटे तक धूप में पतली तह में पक्के सीमेन्ट के फर्श पर या गोबर लिपे कच्चे फर्श पर सुखा लिया जाता है। इस प्रकार बीजों को उपचारित करने से बीज के भीतर छुपा सुसुप्त कवक जाल मर जाता है।

5. आल्टरनेरिया ब्लाइट (आल्टरनेरिया ट्रिटिसिना):

पहचानः यह रोग आल्टरनेरिया ट्रिटिसिना नामक कवक द्वारा होता है। रोग के लक्षण 6-8 सप्ताह पुराने पौधों पर देख जा सकते हैं तथा रोग की अनुकूल अवस्थाओं में फसल के पकने के समय यह और भी उग्ररूप से प्रकट होते हैं। सर्वप्रथम पौधे के निचली पत्तियों पर गोलाकार कुछ लम्बे पीले भूरापन लिए धब्बे पत्तियों पर दिखाई देते हैं जो बाद में किनारे पर कत्थई भूरे रंग के हो जाते हैं। बीच का हिस्सा भूरे रंग का दिखाई देता है। उग्र प्रकोप में कई धब्बे आपस में मिलकर अनियमित आकार के बड़े धब्बों में बदल जाते हैं। पत्तियां पीली पड़कर किनारे से सूखने लगती हैं।

हानिः रोग के प्रकोप से पत्तियां सूखने लगती हैं। पौधा कमजोर हो जाता है। बालियां छोटी, पतली, दाने सिकुड़े होते हैं।

रोकथामः

(i) सदैव प्रमाणित बीजों को बोना चाहिए।

(ii) बीज को बोने से पहले 4 घंटे जल में भिगोकर 10 मिनट तक 52-54^0 सें. तक गरम जल में रखने से बीजोढ़ कवक नष्ट हो जाता है।

(iii) बीज का कवकनाशी से उपचार करें।

(iv) रोग के द्वितीय प्रसार को रोकने के लिए कुछ कवकनाशी जैसे डाइथेन जेड-78 या डाइथेन एम-45 के चार छिड़काव 2.5 कि.ग्रा. मात्रा प्रति

टझझझ लीटर जल में घोलकर प्रति हेक्टेयर के हिसाब से करना चाहिए तथा इसमें 0.1 प्रतिशत सांद्रण का सैन्डविट स्थिरक (sandovit sticker) भी मिला लेना चाहिए।

(v) रोग रोधी किस्मों का प्रयोग करें।

(vi) फसल में उर्वरकों की निर्धारित मात्रा का ही प्रयोग करें।

6. पीला रतुला रोग (पक्सीनिया स्ट्रिआइफार्मिस):

पहचानः यह रोग पक्सीनिया स्ट्रिआइफार्मिस नामक कवक द्वारा होता है। गेहूं तथा जौ की पत्तियों पर पीले छोटे तथा कुछ लम्बे गोल फफोले पड़ते हैं जो दो नसों के बीच में एक लाइन में बनते है परंतु एक दूसरे से मिले नहीं रहते, अंत में ये फफोले काले रंग में बदल जाते हैं और पत्तियों पर काली धारियाँ दिखाई देने लगती हैं। रोग पर्णकंचुक (लीफ शोथ) तथा बुस पत्रों (ग्लूम्स) पर भी पाया जाता है।

7. गेहूं का भूरा रतुआ (पक्सीनिया रिकाण्डिटा)

पहचानः इसमें पत्तियों पर गोल तथा अण्डाकार कुछ बड़े फफोले पडते हैं जो पूरी पत्ती पर बेतरतीब फैले रहते हैं तथा आपस में कभी नहीं मिलते, पत्तियां ही मुख्य रूप से ग्रसित होती हैं।

8. गेहूं का काला रतुला (पक्सीनिया ग्रैमिनिस):

पहचानः फफोले बड़े एवं कत्थई लाल रंग के होते हैं। यह तनों पर और पर्णचोल पर ही मुख्य रूप से बनते हैं। उग्र प्रकोप में फफोले पौधे के ऊपरी भाग तथा पत्तियों पर भी बनते हैं। बाद में काले रंग में बदल जाते हैं।

हानिः उपयुक्त तीनों रतुआ रोगों से पत्तियों के रोग ग्रस्त हो जाने पर पौधों को भोजन बनाने की क्रिया में व्यवधान पैदा होता है जिससे पौधों की अन्य क्रियाओं में भी कमी आ जाती है। पैदावार काफी गिर जाती है।

रोकथामः (i) रोग रोधी किस्मों का प्रयोग करना चाहिए।

(2) गेहूं के तीनों किट्ट रोगों की रोकथाम के लिए डाइथेन जेड-78, डाइथेन एम-48 कवकनाशी का छिड़काव करना चाहिए। इन कवकनाशियों की 2.5 कि.ग्रा. मात्रा को 1000 लीटर जल में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से 3-5 छिड़काव करना चाहिए।

जौ

इस फसल की भी प्रायः उपर्युक्त रोगों द्वारा क्षति होती है। अतः उनका उपचार भी इसी तरह से करना चाहिए।

चना, मटर तथा मसूर

1. पौध झुलसा तथा पौध सड़न (पीयियम, राइजोक्टोनियां):

पहचानः जब खेत में अधिक नमी होती है तो पौध सड़ जाती हैं अथवा कभी-कभी जमीन की सतह से झुक कर उकठ जाती है।

हानिः अंकुरण के समय ही पौधौं के मर जाने से खेत में उनकी संख्या कम हो जाती है। जिससे उपज पर बड़ा प्रभाव पड़ता है।

रोकथामः 300 ग्राम थिरम या जिंक मैंगनीज कार्बामेट को प्रति कुन्तल बीज में मिलाकर शोधन करना चाहिए।

2. मटर का खर्रा या पाउडरी मिल्ड्यू रोग (एरी साइफी पोलीगोनी):

पहचानः यह रोग कवक एरीसाइफी पोलोगोनीं के द्वारा होता है। यह भारत के मटर उगाने वाले सभी क्षेत्रों में पाया जाता है। रोग-ग्रस्त फसल ऐसी दिखाई देती है जैसे सफेद पाउडर का पूरी फसल पर बुरकाव किया गया हो। रोग का प्रभाव जमीन के ऊपर के सभी भाग पर पड़ता है।

हानिः तना तथा फलियाँ बुरी तरह प्रभावित होती हैं। उग्र प्रकोप की स्थिति में पूरी फसल नष्ट हो जाती है।

रोकथामः

(i) मृदा में पड़े रोगग्रस्त पौध-अवशेषों को एकत्र करके जला देना चाहिए।

(ii तरकारी के लिए मटर की अगेती किस्मों को उगाना चाहिए।

(iii) 25-30 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर के हिसाब से गंधक चूर्ण को बुरकना चाहिए। या 0.2 से 0.3 प्रतिशत कैराथेन का प्रयोग करना चाहिए या घुलनशील गंधक 80 प्रतिशत कवकनाशी जैसे इलोसाल, थयोजवट, सल्फैक्स इत्यादि की 3 कि.ग्रा. मात्रा को 1000 लीटर जल में घोलकर प्रति हैक्टर की दर से 2-3 छिड़काव करने चाहिए।

3. मटर का किट्ट या गेरूई रोग (यूरोमाइसीज फेबी):

पहचानः इस रोग को फैलानेवाला कवक यूरोमाइसीज फेबी है। इस रोग के लक्षण फरवरी महीने में अथवा उसके कुछ बाद में पत्तियों पर्णवृन्तों, तनें एवं फलियों पर प्रकट होते हैं। पहले पौधे के हरे भागों पर एक हल्का पीलापन उत्पन्न होता है, जो धीरे-धीरे भूरा हो जाता है। इन पीले धब्बों पर ऐसीयम, गोल अथवा लम्बे गुच्छों में पाये जाते हैं। इसके बाद पौधे के भागों पर छोटे - छोटे अण्डाकार से गोल आकृति के चूर्ण की तरह के हल्के भूरे रंग के यूरोडिनियोस्फोट बनते हैं। ये बहुत अधिक संख्या में बनते हैं और बहुत बड़े क्षेत्र को ढक लेते हैं, जिस कारण से पत्ती परिपक्व होने से पूर्व ही मुरझाकर गिर जाती है। बाद में इन्हीं स्फोडों में गहरे भूरे अथवा काले रंग के टीलियम बनते हैं, जो पत्तियों पर कम, परंतु तनों एवं पर्णवृन्तों पर अधिक बनते हैं। इस किट्ट का कवक मृदा पड़े रोग ग्रस्त पौध अवशेषों पर टीलियमी अवस्था में उत्तरजीवी रहता है और अनुकूल वातावरण में नई फसल पर संक्रमण कर देता है।

हानिः इस रोग से पौधा मुरझाकर पहले ही सूख जाता है जिससे उपज पर भारी प्रभाव पड़ता है।

रोकथामः

(i) प्रमाणित बीज का प्रयोग करना चाहिए।

(ii) फसल चक्र अपनाना चाहिए।

(iii) 2 कि.ग्रा. डाइथेन, एम-45 या डाइथेन, जेड- 78 को 1000 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

(iv) बीज को एग्रोसान जी. एन. या थाइराम इत्यादि से 2.5 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज के हिसाब से उपचारित करके बोना चाहिए।

सरसों एवं लाही

1. झुलसा रोग (आल्टरनेरिया ब्रेसिकी):

पहचानः पत्तियों तथा फलियों पर कत्थई रंग के गोलाकार धब्बे पड़ जाते हैं और पत्तियाँ झुलस जाती हैं।

हानिः पौधे का हरा भाग नष्ट हो जाता है। पत्तियाँ पीली पड़कर गिर जाती हैं तथा दाने कम पड़ते हैं।

रोकथामः प्रति 10 कि.ग्रा. बीज को 20 ग्राम वेनलेट अथवा 25 ग्राम विटावेक्स द्वारा शोधित कर लेना चाहिए। अथवा जिंक मैंगजीन कार्बोनेट 20 कि. ग्रा. अथवा ब्रेस्टान - 60 के 0.8 से 1.0 कि.ग्रा. का प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करना चाहिए।

2. तूलासिता रोग (परनोस्पोरा पैरासिटिका)

पहचानः पत्तियों के ऊपरी सतह पर हल्के पीले धब्बे बनते हैं। इन धब्बों के नीचे पत्तियों की निचली सतह पर फफूंदी के कवक जाल से दिखाई देते हैं। तीव्र प्रकोप में पुष्प वृन्तों पर भी फफूंक का प्रभाव दिखाई देता है तथा कोशीय वृद्धि होकर ये भिन्न-भिन्न रूप में बदल जाते हैं।

हानिः पत्तियों तथा पुष्प वृत्तों के रोग-ग्रस्त होने पर पैदावार में भारी कमी आती है।

रोकथामः जिंक कार्बोमेट अथवा जिंक-मैगनीज कार्बामेट २.० कि.ग्रा. या ताम्रयुक्त रसायन की 2.5 कि.ग्रा. मात्रा का प्रति हेक्टर छिड़काव करना चाहिए।

नोबेल पुरस्कारः किसे और क्यों?

कोशिका जीवविज्ञान में महत्वपूर्ण विकासः पैच क्लैंप विधि

डा. के. पी. मिश्र
वैज्ञानिक अधिकारी
विकिरण जीवविज्ञान प्रभाग
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, बंबई-400085.

वर्ष 1991 का औषधि और शरीर क्रिया विज्ञान में नोबेल पुरस्कार जर्मनी के डा. इरविन नेहेर और डा. बर्ट साकमैन को साझेदारी में दिया गया है। कोशिका विज्ञान क्षेत्र में इन वैज्ञानिकों का शोध कार्य इस शताब्दी की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि है। अपनी प्रयोगशाला में संयुक्त रुप से कार्य करते हुए लगभग पन्द्रह वर्ष पूर्व इन विजेताओं ने कोशिका-झिल्ली में एकल आयन चैनल का अस्तित्व तथा उसकी कार्य-प्रणाली का अध्ययन किया। इन दोनों वैज्ञानिकों ने ''पैच क्लैंप'' नामक एक ऐसी तकनीक को जन्म दिया है जिसने कोशिका और झिल्ली विज्ञान में क्रांति पैदा कर दी है। इस विधि से कोशिकाओं की कार्य विधि और संचार व्यवस्था को समझने में सफलता मिली है जिससे चिकित्सा जगत भरपूर लाभान्वित हो रहा है।

विजेताओं का परिचय

डॉ. नेहेर (46 वर्ष) और डॉ. साकमैन +47 वर्ष) कोशिका विशेषज्ञ है। जर्मनी के म्युनिख स्थित टेक्निकल विश्वविद्यालय से भौतिक विज्ञान में स्नातक स्तर की शिक्षा पूरी करने के पश्चात नेहेर ने अमेरिका के विस्कांसिन विश्वविद्यालय से एम. एससी. की डिग्री सन् 1967 में प्राप्त की। स्वदेश लौटकर उन्होने गोटिंगन के मैक्सप्लांक जैव भौतिक रसायन संस्थान में कार्य प्रारंभ किया जहां इस समय वे कोशिका झिल्ली प्रयोगशाला के निदेशक हैं।

डा. साकमैन म्युनिख विश्वविद्यालय से सन् 1967 में चिकित्सा विज्ञान में डिग्री प्राप्त करके लंदन के प्रख्यात वैज्ञानिक बर्नार्ड काटज की प्रयोगशाला में उच्च अध्ययन के लिए गए। सन् 1974 में उन्होंने गोटिंगन के मैक्सप्लांक संस्थान में सहायक प्रवक्ता की हैसियत से प्रवेश किया। इसके पश्चात डा. नेहेर और डा. साकमैन का संयुक्त शोध कार्य प्रारम्भ हुआ जिसमें उन्होंने कोशिका झिल्ली में आयन चैनल के गुण व व्यवहार का अध्ययन किया। इस समय डा. साकमैन जर्मनी में हीडलबर्ग स्थित मैक्स प्लांक आयुर्विज्ञान संस्थान के कोशिका क्रिया विभाग में निदेशक हैं।

कोशिका झिल्ली और आयन चैनलः

कोशिका झिल्ली और आयन चैनल के बारे में ।रा कौतूहल स्वाभाविक है। इस शताब्दी के आरंभ में वैज्ञानिकों ने पता लगाया कि शरीर की सभी कोशिकाएं (मांस पेशी, हृदय, तंत्रिका आदि) एक पतली बाह्य झिल्ली से धिरी होती हैं और कोशिकाओं का सामान्य जीवन इसी बाह्य झिल्ली तथा अनेक आंतरिक झिल्लिओं द्वारा नियंत्रित होता है। जाहिर है कि झिल्लियों में किसी प्रकार की त्रुटि कोशिका में विकार पैदा कर सकती है और यहां तक कि उसका जीवन खतरे में पड़ सकता है। हम जानते है कि कोशिकाओं की अनियमित वृद्धि व विभाजन ही कैंसर रोग है। इसीलिए कोशिकाओं के गुण और व्यवहार का अध्ययन आरंभ से ही चिकित्सा विज्ञान का मुख्य विषय रहा है। वास्तव में कोशिका बाह्य झिल्ली एक ऐसे 'सतर्क संतरी' की तरह है जो बाहरी वातावरण से बराबर संपर्क रखते हुये उसके आंतरिक कार्यो पर नियंत्रण रखती है।

कोशिका झिल्ली मूलतः फास्फोलिपिड अणुओं की दोहरी पर्त है (चित्र-1)। इस पर्त का भीतरी भाग तेल जैसा गुण दर्शाता है और जल अथवा अन्य ध्रुवीय अणुओं के प्रवेश व निकास में बाधक है। प्रयोगों के आधार पर वैज्ञानिकों ने बहुत पहले ही कोशिका झिल्ली में 'विशेष

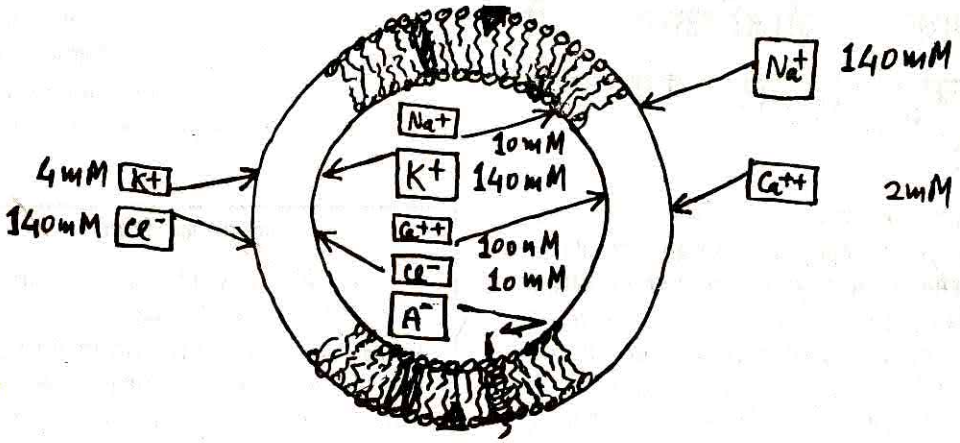

चित्र-1
जैवकीय जीवित कोशिका के भीतर व बाहर मुख्य आयन एवं इनकी असमान सान्द्रता

आयन चैनल' की कल्पना की थी जिससे जल व अन्य ध्रुवीय अणु पार हो सकते है किन्तु इस प्रकार के चैनल के अस्तित्व की पुष्टि नेहेर और साकमैन की पैच क्लैंप विधि द्वारा ही संभव हुई। उसके प्रयोगों से सिद्ध हुआ कि आयन चैनल तरह तरह के होते हैं तथा संवेदी एवं गैर संवेदी दोनों प्रकार की कोशिकाओं में विद्यमान हैं।

कोशिका झिल्ली में आयन चैनल वस्तुतः 'अणु स्विच' की भांति कार्य करते हैं। इन आयन चैनलों में एक अद्‌भुत चयनशक्ति होती है जिसके आधार पर वे विभिन्न आयनों जैसे सोडियम, पोटेशियम, कैलशियम आदि को पहचान लेते हैं और उनके प्रवेश हेतु खुलते हैं, इसलिए इन आयनों के आधार पर ही चैनलों का नामकरण किया गया है। कुछ दूसरे प्रकार के चैनल भी कोशिकाओं में पाये गए हैं जो न्यूरोट्रांसमीटरों तथा अन्य विशिष्ट रसायनों और औषधिओं को पहचानते हैं और उनके आगमन पर ही खुलते हैं। इन आयन चैनलों को भी इन्हीं रसायनों के आधार पर जाना जाता है जैसे निकोटीनिक एसीटाइलकोलीन, ग्लूटामेट, ग्लाइसीन चैनल आदि। यह उल्लेखनीय है कि चैनल खुलने पर लगभग 10 लाख आयन प्रति सेकन्ड प्रत्येक चैनल से पार हो जाते हैं। इस तरह प्रवाहित होने वाली अत्यंत सूक्ष्म विद्युत धारा ($<10^{-12}$ एम्पियर) का मापन पैच विधि आविष्कार के पूर्व संभव नहीं था।

इस शताब्दी के मध्य में कोशिकाओं के विद्युतीय गुणों की जानकारी प्राप्त करना अध्ययन का केन्द्र बिन्दु रहा। हम जानते है कि कोशिका के अन्दर और बाहर का वातावरण भिन्न है तथा आयनों के आवेश तथा सांद्रण भिन्न होने से कोशिका झिल्ली में एक विभव उत्पन्न होता है जिसे 'झिल्ली विभव' कहते है। जैवकीय कोशिकाएं इसी विभव द्वारा आयनों का बहाव नियंत्रित करती है। इसका अध्ययन प्रसिद्ध वैज्ञानिक एलन हाजकिन और एन्ड्रयू हक्सली ने वोल्टेज क्लैंप विधि से स्क्विड तंत्रिका कोशिका (व्यास लगभग 1 मि. मि.) में विस्तार से किया था और प्रयोगों से सिद्ध किया कि आयनों का बहाव कोशिका विभव द्वारा नियंत्रित होता है। इस शोध कार्य पर इन वैज्ञानिकों को वर्ष 1963 में नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया था। वैज्ञानिकों की समस्या यह थी कि छोटी कोशिकाओं में एकल आयन चैनल का अध्ययन कैसे किया जाय। परंतु आज यह पैच विधि से संभव हो गया है। जिसका विकास डा. नेहेर तथा डा. साकमैन ने किया। आइये इसके बारे में कुछ चर्चा करें।

पैच क्लैंप विधिः

यह जानते हुए कि कोशिकाएं अपनी बाह्य झिल्ली के आर-पार का विभव विशिष्ट आयन चैनल द्वारा अल्प विद्युत नियमन करती हैं कई वर्षों तक वैज्ञानिक उनकी कार्य विधि और मापने में असमर्थ रहे। साधारणतः किसी भी भौतिक विधि में हम तमाम सारे चैनलों का सामूहिक प्रतिसाद (रेस्पांस) मापते है। इस तरह हमारा अध्ययन मैक्रोस्कोपिक गुणों तक सीमित रहता हैं। किसी विशेष आयन चैनल का विद्युतीय संकेत झिल्ली की विद्युतीय रव (नॉयज) में छिप जाता है। नेहेर और साकमैन की पैच विधि की खूबी यही है कि इससे हम समूचे कोशिका झिल्ली की रव को दूर कर किसी विशेष चैनल की विद्युत धारा माप सकते है। यह कुछ ऐसा लगता है कि पैच विधि ठीक उस प्रकार कार्य करती है जैसे किसी शोरमय भीड़ में हम विशेष व्यक्ति की आवाज पहचान लेते हैं।

पैच विधि में कोशिका झिल्ली के एक सूक्ष्म भाग को सक्शन द्वारा माइक्रोपिपेट के मुहाने पर (व्यास 1-2 माइक्रोन) सील कर दिया जाता है। चित्र 2 में हम देखते है कि संपूर्ण कोशिका में झिल्ली के अन्दर का हिस्सा बाहर या बाहर का हिस्सा बाहर की स्थिति में ले लिया जाता है। पिपेट में लवणीय जल या औषधि आदि लेकर एकल आयन. चैनल का अभिलक्षण एवं उनके गुणों का अध्ययन कर सकते है। नेहेर और साकमैन ने पाया कि विशिष्ट चैनल या तो पूरा खुल जाता है या फिर पूरा बन्द हो जाता है। बीच की स्थिति कभी नहीं पायी गई। चैनल के खुलने पर आयनों के बहाव से उत्पन्न विद्युत द्वारा का मापन जटिल इलेक्ट्रानिक समायोजन द्वारा कर लिया जाता है। इस विधि द्वारा सबसे पहले मांस पेशी कोशिका में एसीटाइलकोलीन द्वारा उत्तेजित एकल आयन चैनल का अध्ययन, नेहेर और साकमैन ने सन् 1976 में जर्मन जैव भौतिक सोसायटी की वार्षिक सभा में प्रस्तुत किया। इस खोज से वैज्ञानिकों की उत्तेजना व उत्साह का ठिकाना न रहा।

यह दिलचस्प बात है कि आगामी कई वर्षों तक पैच विधि के विकास एवं उपयोगिता में अनेक अवरोध बने रहे। मुख्य समस्या यह थी कि पिपेट और कोशिका झिल्ली की सील मजबूत नहीं थी जिससे वह निःस्त्रावी हो जाती थी और झिल्ली की नॉयज बढ़ जाती थी, लगातार अथक प्रयासों के फलस्वरुप सौभाग्य से नेहेर ने एक युक्ति निकाल ही ली जिससे सील लगभग 100 गुना अधिक मजबूत हो गयी। इसे ''गीगा सील'' कहा गया जिसका आविष्कार सन् 1982 में घोषित हुआ। इसका अर्थ है कि पिपेट और झिल्ली के बीच के गीगा ओम के प्रतिरोध से पैच विधि की उपयोगिता बढ़ गई। इसके बाद विश्व की अनेक प्रयोगशालाओं में तेजी से शोध कार्य आरंभ हो गए। अब इस विधि से छोटी से छोटी कोशिकाओं जैसे मस्तिष्क तंत्रिका आदि का अध्ययन संभव हो गया है। स्वीडिश कैरोलिंस्का संस्थान ने इन वैज्ञानिकों की खोज पर पुरस्कार घोषित करते हुए कहा था ''इन वैज्ञानिकों द्वारा किए गए शोध कार्य से कोशिका जीव विज्ञान के क्षेत्र में एक क्रान्तिकारी प्रगति हुई है। उनकी खोज से औषधियों के विकास हेतु हमें एक नयी और अधिक प्रभावशाली दिशा मिली है।''

10 लाख डालर मूल्य के इस नोबेल पुरस्कार की घोषणा पर एक प्रश्न के उत्तर में डा. साकमैन ने कहा था ''मुझे पूरी तरह आश्चर्य हुआ। मैने ऐसी आशा कतई नहीं की थी'' इसी संदर्भ में डा. नेहेर ने कहा था ''जब उन्हें नोबेल पुरस्कार समिति ने फोन पर यह सूचना दी तो कुछ क्षण के लिए वे वाणी विहीन हो गये।''

पैच क्लैंप विधि के अनुप्रयोगः

जैसा कि हम देख चुके है कि यह तकनीक कोशिका से कोशिका के बीच संचार संबंधित पहलुओं के अध्ययन में सक्षम है। तथा इसकी अत्योच्च सुग्राहकता का औषधि एवं शरीर विज्ञान के क्षेत्र में अनेकों अनुप्रयोग संभव हैं। इनमें से कोशिकाओं की संकेत विधि का अध्ययन, कोशिका संदेश एवं स्मरण, आण्विक इलेक्ट्रानिक्स का विकास, जैव कोशिका अनुसंधान, चैनल गुण धर्म, कई बीमारियों के कारणों की जानकारी एवं आवश्यक औषधियों की खोज इत्यादि महत्वपूर्ण कहे जा सकते हैं। आयन चैनल द्वारा कैलशियम आयन कोशिका में प्रवेश कर तंत्रिका, पेशियों एवं हृदय कोशिकों में संकुचन पैदा करता है। कोशिकाएं एक दूसरे को तांत्रिका आवेग तथा संदेशक रसायनों द्वारा समाचार भेजती हैं। पैच विधि से सीनेप्ज झिल्ली के अध्ययन से संचार व्यवस्था की जानकारी मिल रही है तथा स्मरण जैसी जटिल गुत्थियों को समझने की आशा बंध रही है।

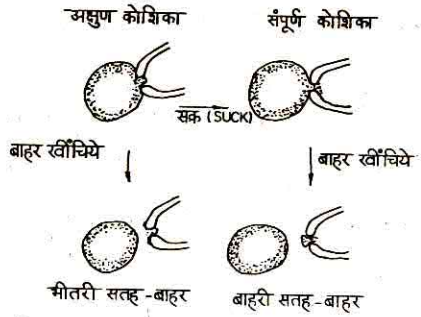

चित्र-2
पैच रिकार्डिंग की चार मुख्य विधियाँ: एक स्वच्छ पिपेट से कोशिका-झिल्ली पर दबाव डालकर पिपेट और झिल्ली के बीच गीगासील पैदा किया जाता है, इस तरह संपूर्ण कोशिका या फिर कोशिका झिल्ली की भीतरी अथवा बाहरी सतहों को बदल कर उनके गुणों का अध्ययन किया जा सकता है।

जीवित कोशिका झिल्ली में तथा कृत्रिम झिल्ली में आयन चैनल के गुण, व्यवहार व विधि के अध्ययन नये आण्विक इलेक्ट्रानिक्स तथा जैव संसूचन तकनीक के विकास में सहायता कर रहे है। नये प्रकार के चैनलों की खोज, उनकी संरचना, चयनशीलता तथा कार्यप्रणाली आदि के विस्तार से अध्ययन में इस तकनीक का उपयोग हो रहा है। इन अध्ययनों के फलस्वरुप कैलशियम चैनल के तीन नियमन स्थल पाये गये है तथा L, N तथा T किस्म के चैनलों की जानकारी मिली है। कई बीमारियों के कारणों की जानकारी देने में यह तकनीक विशेष सफल रही है। उदाहरणार्थ सिस्टिक फाइब्रोसिस जैसी बीमारी में क्लोराइड चैनल त्रुटिपूर्ण हो जाता है। मधुमेह की बीमारी में पैंक्रियास के बीटा- कोशिकाओं के स्रवण में विकार आ जाता है, इत्यादि संबंधित अध्ययनों के परिणामस्वरुप अधिक इंसुलिन स्रावित करने वाली सल्फोनीलूरिया औषधि का विकास संभव हो पाया है।

अंत में यदि यह कहा जाय कि आने वाले दशकों में पैच विधि की कोशिका जीव विज्ञान तथा चिकित्सा एवं औषधि के क्षेत्र में अग्रणीय भूमिका रहेगी, शायद अतिशयोक्ति न होगी।

(पृष्ठ 34 से आगे)

(6) अधिक कठिन व्यायाम न कर के हल्का व्यायाम और नियमित टहलना लाभकारी है,

(7) तनाव तथा चिंता से मुक्त रहें,

(8) नशीले पदार्थो का प्रयोग कम से कम करें,

(9) संतुलित आहार लें तथा सुंदर जीवन शैली का विकास करें,

(10) यदि आप चिकित्सक से उपचार ले रहे हैं, तो चिकित्सक अनुसार दवा का प्रयोग नियमित होना चाहिए। अगर किसी प्रकार की दशा में परिवर्तन हो, तो चिकित्सक को तुरंत सूचित करें,

(11) रक्त चाप की जाँच, 30 वर्ष आयु वाले को छः महीने में एक बार तथा 70 वर्ष या इससे अधिक की आयु वाले को 3 महीने में एक बार अवश्य करानी चाहिए।

(12) अपने भोजन में निम्नलिखित सावधानी बरतनी चाहिए:-

- ❑ कृत्रिम रंग और स्वाद मिलाये हुए भोजन से दूर रहें।
- ❑ चीनी, अति सफेद चावल, छने हुए गेहूँ के आटे और सोफ्ट ड्रिंक्स में कमी करें।
- ❑ मैदे की बनी चीजों को कम खाएँ।
- ❑ मक्खन, क्रीम, घी, चर्बी वाले मांस का प्रयोग कम करें।
- ❑ चाय और कॉफी का सेवन कम करें।
- ❑ भोजन में कम से कम प्राकृतिक अवस्था में पोषक पदार्थ अवश्य रहे।
- ❑ ताजे और स्वच्छ फल तथा सब्जी का उपभोग करें।
- ❑ सूर्यमुखी के बीज या तिल और अनाज के तेल का प्रयोग अच्छा होता है।
- ❑ विटामिन न केवल संतुलित भोजन के लिए महत्वपूर्ण हैं, बल्कि उच्च रक्त चाप और अन्य ब्याधियों के बचाव और उपचार के लिए उपयोगी हैं।

इस प्रकार, हम ठीक समय पर उच्च चाप से बचाव और उपचार करने से स्वस्थ शरीर का विकास कर अपने जीवन को सुखमय बना सकते हैं।

टिप्पणियां

1. कैसे हो सम्पर्क - लोकांतरवासियों से

अंतरिक्ष विज्ञान में नित्-नवीन उपलब्धियों की प्राप्ति के पश्चात आज धरतीवासी यह सोचने के लिए विवश हो गये हैं कि क्या पृथ्वी के अतिरिक्त अन्य ग्रहों र भी जीवन की संभावना है? और यदि है तो उसका बुद्धिस्तर क्या है और वहां के निवासियों से कैसे सम्पर्क बनाया जा सकता है?

बुद्धिस्तर के संदर्भ में सन् 1964 में, दो रुसी अंतरिक्ष लेखकों, जी. अल्तोव और वी. जुरालेवा ने 1908 में साइबेरिया के घने जंगलों में गिरी उल्का की जांच कर यह निष्कर्ष निकाला कि यह उल्कापिंड नहीं अपितु 61 सिग्नी नामक नक्षत्र से सम्बंधित किसी ग्रह से आने वाली सूचना रश्मि थी और यह सूचना इस ग्रह के निवासियों ने 1883 में क्राकातोआ ज्वालामुखी विस्फोट के कारण पृथ्वी से ली रेडियो तरंगों के उत्तर में भेजी थी। लेखकों की रिपोर्ट प्रकाशित होने पर खगोल - विज्ञान के क्षेत्र में सनसनी फैल गयी।

विज्ञान के क्षेत्र में पांचवा और छढंवा दशक उड़नतश्तरियों के कारण काफी चर्चित रहा है। अनेक लेखकों ने इस पर पुस्तकें भी लिखी। कुछ लोगों ने इन तश्तरियों को देखने और अपने आसपास उतरने का दावा भी किया। कुछ विमानों द्वारा पीछा भी किया गया पर कोई महत्वपूर्ण उपलब्धि प्राप्त न हो सकी। इन घटनाओं को देखते हुए वैज्ञानिकों ने यह निष्कर्ष निकाला कि अति दूर अंतरिक्ष में हमसे भी अधिक उन्नत जीव हैं जो उड़न-तश्तरियों के माध्यम से हमारी चौकसी कर रहे हैं। वे समय-समय पर आकर यहां से आवश्यक सूचनायें ले जा रहे हैं। इसी तरह बरमूडा त्रिकोण को लोकांतरवासियों का सैरगाह माना जा रहा है जहां से वे पृथ्वीवासियों को अपने ग्रहों पर ले जाते हैं। इन कल्पनाओं को यदि छोड दिया जाय तो भी हमारे पास पर्याप्त तथ्य हैं जिससे स्पष्ट होता है कि हमारी आकाशगंगा के ग्रहों पर उन्नतिशील जीव बसते हैं तथा वे बराबर हमसे रेडियो तरंग या इसी तरह के अन्य तरंगो के माध्यम से सम्पर्क हेतु प्रयत्नशील हैं।

अंतर्राष्ट्रीय अंतरिक्ष वैज्ञानिकों की संस्था ''कमेटी आन स्पेस रिसर्च'' का एक सम्मेलन 1986 में अहमदाबाद में हुआ था जिसमें विश्व के चोटी के अंतरिक्ष वैज्ञानिक शामिल हुए थे। इस सम्मेलन का मुख्य विषय था कि अन्य ग्रहों के निवासियों से सम्पर्क कैसे साधा जा सकता है? इस संदर्भ में सम्मेलन के दो वर्ष बाद एक दस - वर्षीय योजना तैयार की गयी। सेती (सर्च फार एक्स्ट्रा टैरेस्ट्रियल इंटेलिजेंट लाइफ) नाम से प्रसिद्ध इस योजना की कल्पना संस्था के 1985 के फ्रांस वाले सम्मेलन में आयी थी।

हमारी आकाशगंगा में एक खरब नक्षत्र हैं। ऐसी आकाशगंगायें करोड़ों में हैं। अपना सूर्य आकाशगंगा का एक सामान्य तथा अत्यंत छोटा सा नक्षत्र है। ब्रिटेन के अंतरिक्ष शास्त्री डेस्मांड किंग हेली ने अपनी आकाशगंगा तथा उसमें उपस्थित, ग्रहों, नक्षत्रों का विस्तृत अध्ययन करके एक तालिका का निर्माण किया तथा संभावना व्यक्त की कि 50 करोड़ ग्रहों पर सम्मुन्नत जीवन विद्यमान है तथा दस करोड़ ग्रहों के निवासी हमारी पृथ्वी पर संकेत भेज रहे हैं। हेली ने अपनी तालिका के आधार पर समझाया कि यदि हर दस नक्षत्रों के पीछे एक नक्षत्र के साथ अपना ग्रह परिवार है तो हमारी आकाशगंगा में कुल 10 अरब ग्रह परिवार होगें। लेकिन हेली ने कहा कि हर परिवार में जीवों के निवासयोग्य

ग्रहों का होना जरुरी नहीं है। केवल वही ग्रह जीवों के निवासयोग्य हो सकता है जो अपने अधिपति नक्षत्र (जैसे हमारा सूर्य) के जीव-वलय में (अर्थात ऐसे नभक्षेत्र जहां तापमान न बहुत ऊचां हो और न बहुत कम) भ्रमण करता है। हेली ने स्पष्ट किया कि ग्रह परिवारों से युक्त 10 अरब नक्षत्रों में से आधे के साथ एक-एक ग्रह हैं जो जीव-वलय में भ्रमण करते हैं। अतः पांच अरब ग्रह ऐसे हैं जिन पर जीवों का अस्तित्व संभव है। हेली की तालिका निम्न है-.

● हमारी आकाशगंगा के कुल नक्षत्र	10^{11}
● ग्रह परिवारों से युक्त नक्षत्र	10^{10}
● जीवों के निवासयोग्य ग्रह	$5x10^{9}$
● ऐसे ग्रह जिस पर सम्मुन्नत जीवसमाज है	$25x10^{9}$
●जीवधारी ग्रह	$25x10^{8}$
● ऐसे ग्रह जिन के जीव संकेत भेजना चाहते हैं	10^{8}
● ऐसे ग्रह जो इस समय संकेत भेज रहे हैं	10^{6}

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या निवासयोग्य ग्रहों पर जीव का विकास होगा ही? इसका उत्तर हां में दिया

संदेश प्रारंभ →

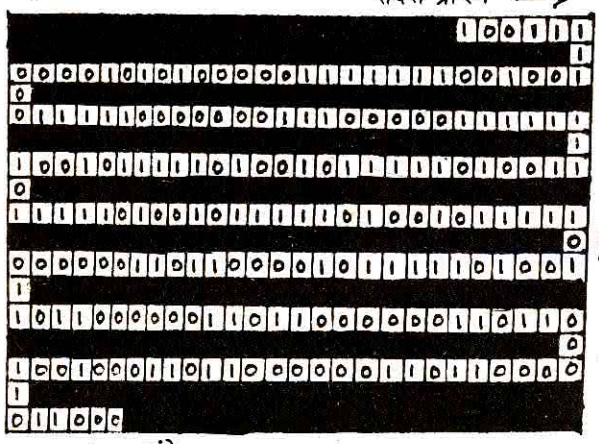

चित्र-1

← संदेश समाप्त

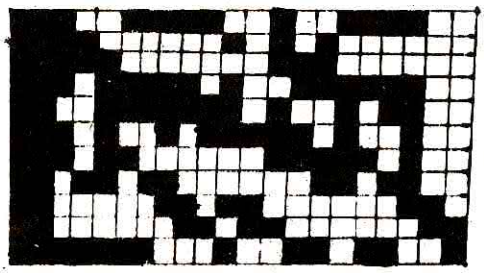

चित्र-2

चित्र-3

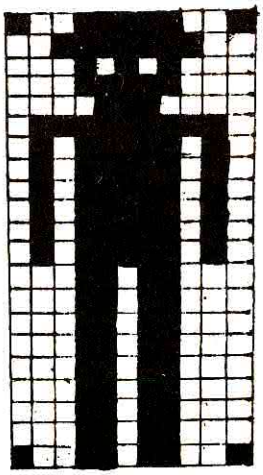

धरती पर मानव के अस्तित्व का संकेत

लोकांतरवासियों को धरती पर दो पाये मनुष्य के अस्तित्व की सूचना देने के लिए कुछ वैज्ञानिकों ने यह सरल संकेत क्रम सुझाया है। इसमें कुछ संकेत भावात्मक और कुछ अभावात्मक होंगे। कुल 209 संकेत होगे। इसकी घटक होगी 27 और 17 की संख्यायें (चित्र-1) भावात्मक संकेत को भरा हुआ और अभावात्मक संकेत को खाली खाना माना गया है। इन संकेतों को वर्ग पहेली के रुप में भी माना जा सकता है। 17 खाने आडे और 11 खाने खड़े रखने पर संकेतों का अर्थ नहीं निकलेगा (चित्र-2) वहीं अगर 19 खाने खड़े और 11 खाने आडे रखकर देखा जाय तो दो आंख, दो कान, दो हाथ व दो पैर वाले खड़े इंसान की तस्वीर बन जाएगी चित्र-(3)

जा सकता है लेकिन यह इस बात पर निर्भर करता है कि जीव किस-तरह विकसित होता है। मिलर के प्रयोगों से यह सिद्ध हो चुका है कि जहां भी परिस्थितियां अनुकूल होंगी वहाँ जैव पदार्थ उत्पन्न हो जायेगें। इस आधार पर माना जा सकता है कि निवासयोग्य ग्रहों में आधे में यानि ढाई अरब ग्रहों पर जीवों का अस्तित्व है परंतु किसी भी ग्रह पर जीवन की उपस्थित के लिए उस जीव का विकास भी होना आवश्यक है। अनेक ग्रहों पर जीवों का प्रादुर्भाव तो होता है पर विकास नहीं कर पाते। हमारे सौर परिवार के मंगल की शायद यही स्थिति है।

सम्पर्क के माध्यमः-

अब दूसरे प्रश्न पर आते हैं कि अन्य ग्रह के निवासियों से संबंध कैसे स्थापित किया जाय? सन् 1965 में रूसी रेडियो खगोलशास्त्री एन कर्दा शेव और जी शोलोमित्स्की ने एक सनसनीखेज दावा किया था कि सी. टी. ए.-102 नामक सुदूर रेडियो स्त्रोत खास ढंग से अपनी फ्रीक्वेंसी बदल रहा है जो इस बात का प्रमाण है कि वहां कोई अतीव सम्मुन्नत जाति बसती है। इस तथ्य को यदि झुठला भी दिया जाये तो इसका अर्थ यह कदापि नहीं होगा कि लोकांतरवासियों से रेडियों संकेत प्राप्त होना असंभव है।

यह सर्व विदित तथ्य है कि अपने सौर परिवार के बाहर के किसी ग्रह पर राकेट यान भेजना अत्यधिक दूरी के कारण संभव नहीं है। अतः उन निवासियों से सम्पर्क का एक मात्र रास्ता रेडियो तरंग ही है। चूंकि ये तरंगे विद्युत गति (1,86,000 मील प्रति सेकंड) से ही चलती हैं अतः किसी नक्षत्र से सम्बंधित ग्रह पर पहुंचने में बहुत अधिक समय लगेगा। उदाहरण के लिए 'एटसीलान' 'एरीडानी' पृथ्वी के सबसे निकटवर्ती तारों में से एक है और पृथ्वी से मात्र साढें दस प्रकाशवर्ष की दूरी पर स्थित है। मान लें आज हमें वहां से कोई संदेश मिला है तो इसका अर्थ यह हुआ कि संदेश वहां से 1981 में चला होगा, और यदि हम तुरंत जबाब भेंज दें तो संदेश वहाँ पहुचने तक इक्कीसवीं सदी प्रारंभ हो चुकी होगी।

रुसी वैज्ञानिकों का विचार है कि लेसर किरणें और चाक्षुषीय खगोलविद्या की सहायता से सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है। अहमदाबाद में हुए सम्मेलन में भौतिकीय शोध प्रयोग शाला के डॉ. एस. पी. गुप्ता ने बताया कि यदि लोकांतरवासी सचमुच अधिक बुद्धिमान हैं तो उन्होनें अपने रेडियो और टेलीविजन सेटों से लाखों वर्ष पहले ही छुट्टी पा ली होगी और यदि वे मनुष्य से कम बुद्धिमान हैं तो उनके पास रेडियो या टेलीविजन सेट होगें ही नही ं। ब्रिटेन के फ्रेड हायल का मत था कि अन्य ग्रह के बुद्धिमान वासियों की तुलना में विकास क्रम के लिहाज से पृथ्वीवासी मानव बहुत पीछे हैं और संभवतः इस बात का उन्हें पता है और शायद इसीलिए उनकी निम्न श्रेणी के इस मानव से सम्पर्क करने में कोई रूचि नहीं है। फिर भी उनका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए हमें सांकेतिक भाषा में अपने बारे में कुछ न कुछ बताना चाहिए।

लोकांतरों को शाब्दिक संकेत भेजने में कितनी कठिनाइयां हैं यह किसी से गुप्त नही है। इसलिए गणित पर आधारित कुछ संकेतों की कल्पना की गयी है जिनके अन्य लोकों के जीवों द्वारा समझे जाने की कुछ आशा की जा सकती है (देखिये चित्र)। जहां पर सारे प्रश्नों पर विचार अपनी आकाशगंगा को ही केंद्र में रखकर किया गया है और यह हिसाब लगाया गया है कि कोई दस लाख ग्रह इस समय हमें संकेत भेज रहे हैं।

ब्रह्मांड में विभिन्न ग्रहों पर जीवन विद्यमान है इसपर संदेह करना सही नही है। हां! यह तो सच है कि उस पर हमारी शक्ल - सूरत के जीव न होकर कुछ अन्य आकार के हों और मानसिक तथा बौद्धिक दृष्टि से बहुत ही आगे हों। विज्ञान लेखकों ने अन्य ग्रहों के जीवन के संबंध में जो रोचक प्रसंग लिखें हैं उसे यूं ही झुठलाया नही जा सकता। अभी हम उसे मात्र कल्पना मान सकते हैं। परंतु हो सकता है भविष्य में यह सत्य परिणत हो जाये।

डॉ. अवधेश शर्मा वैज्ञानिक
केंद्रीय ईंधन अनुसंधान संस्थान
पोस्ट बाक्स - 14, बिलासपुर-495001 (म. प्र.)

2. जलकुम्भीः अभिशाप या वरदान

आजकल देश के प्रायः अधिकांश तालाबों, बड़े-बड़े गड्ढों, नालों एवं यहां तक कि नदियों में भी पानी की सतह पर हरे-हरे और कुछ गोलनुमा गुच्छों से युक्त पत्तों वाली वनस्पति फैली हुई देखने को मिलती है, जो पूरे जल क्षेत्र के आवरण को ढके रहती है एवं दूर से देखने पर अत्यन्त आकर्षक व लुभावनी दृष्टिगोचर होती है। इसकी सुन्दरता तब और द्विगुणित हो जाती है, जब समें गुच्छों की तरह लाल, सफेद एवं नीले-नीले फूल निकल आते है। यह वनस्पति ही जलकुंभी नाम से प्रचलित है, जिसकी लम्बाई संभवतः तीन से दस इंच तक होती है तथा इनकी जड़ें थिरकते मयूर के फैले ड़ेनों की तरह पानी में फैली रहती है।

हमारे देश में जलकुम्भी नामक यह वनस्पति संभवतः वर्ष 1816 में ब्राजील से आयी जो वर्तमान समय में पश्चिम बंगाल, कर्नाटक, उत्तर प्रदेश, असम, पंजाब, तामिलनाडु, आंध्र प्रदेश एवं मध्य प्रदेश में अपना साम्राज्य कायम कर चुकी है। जलकुम्भी को मुख्य रूप से नीलारूणा, समुद्र सोख, ज्वालामुखी एवं जल सम्बुल आदि नामों से पुकारा जाता है। इसका वैज्ञानिक नाम ''इक्रोनिया क्रेसीपस'' है।

अभिशाप के रूप में जलकुम्भीः जलकुम्भी जिस तालाब में अपना साम्राज्य कायम कर लेती है, उसकी सुन्दरता को सर्व प्रथम नष्ट कर देती है। इसके अनेकों उदाहरण देखने को मिलते हैं। उदयपुर की प्रसिद्ध पिछोला झील में जलकुम्भी ने अपना इतना अधिक साम्राज्य कायम कर रखा था कि झीलों की सुरम्य नगरी एक तरह से नरक बनकर रह गयी थी और इस झील की प्राकृतिक सुन्दरता समाप्त हो चुकी थी। किन्तु वहां के उत्साही स्वयंसेवी संगठन एवं जनता युद्ध स्तर पर कार्य कर इस झील से जलकुम्भी को निकाल पाने में समर्थ हुए, फिर भी कुछ प्रभाव अब भी बना हुआ है। गोरखपुर के रामगढ़ ताल एवं बलिया के प्रसिद्ध सुरहा ताल भी जलकुम्भी के दुष्प्रभाव से वंचित नहीं हो पाये हैं।

जलकुम्भी से युक्त जल में संभवतः 30 छोटे-छोटे जीवाणु एवं कीटाणु पाये जाते हैं, जो सम्पूर्ण जल क्षेत्र को रोगग्रस्त कर देते हैं। इस प्रकार यह जल प्रदूषित हो जाता है एवं इस जल को पीने या स्नान करने से अनेक प्रकार के रोग हो जाने की सभवना बनी रहती है; यहां तक कि यह जल मवेशियों के पीने के लिए भी लाभकर नहीं रह जाता है। जलकुम्भी कभी-कभी धान के निचले खेतों में भी अपना साम्राज्य कायम कर लेती है, जिससे धान की फसल कमजोर हो जाती है अथवा बिल्कुल नष्ट हो जाती है, क्योंकि जलकुम्भी से धान का पौधा दब जाता है एवं विकसित नही हो पाता और कृषक यदि इस जलकुम्भी को निकालने का भी प्रयास करता है तो भी धान का पौधा नष्ट हो जाता है।

वरदान के रूप में जलकुम्भीः जलकुम्भी से हानि की अपेक्षा लाभ कहीं अधिक हैं, वशर्ते कि इसका समुचित उपयोग किया जाय। जलकुम्भी में मुख्य रूप से कच्चा प्रोटीन 15 से 23%,नाइट्रोजन 4%, पोटाश एवं फास्फोरस 4% एवं जल की मात्रा 75% से 80% रहती है। इस तरह जलकुम्भी में निहित यदि इन तत्वों का समुचित उपयोग किया जाय तो यह जलकुम्भी अभिशाप की जगह हमारे लिए वरदान सिद्ध हो सकती है। अनेक अनुसंधानों के आधार पर यह सिद्ध भी हो चुका है कि जलकुम्भी हमारे लिए वरदान है।

जलकुम्भी से ऊर्जा की प्राप्तिः भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के वैज्ञानिक, डा. शराफ्त अली के अनुसार जलकुम्भी को कई तरह से उपयोग में लाया जा सकता है। दुर्गापुर के केन्द्रीय यांत्रिकी शोध संस्थान ने जलकुम्भी

से मीथेन गैस तैयार करने की प्रक्रिया विकसित की है जिसके अनुसार एक किलो निर्जल भार की जलकुम्भी में 374 लीटर गैस तैयार होती है। इसी तरह ऊर्जा के स्त्रोत के रूप में ही उदयपुर विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने भी एक प्रयोग किया है जिसमें एक किलो सूखी या 20 किलो हरी जलकुम्भी से 370 लीटर ईंधन गैस प्राप्त की जा सकती है। इसकी बारीक कुट्टी को सामन अनुपात में गोबर के साथ मिलाकर गोबर गैस संयंत्र में भी उपयोग किया जा सकता है।

जलकुम्भी से औषधि का निर्माणः जलकुम्भी से अनेक प्रकार की औषधियां भी बनायी जा रही हैं। आयुर्वेद के अन्दर जलकुम्भी के अनेक उपयोग बताये गये हैं। जलकुम्भी के तेल से कान बहने की बीमारी को लाभ होता है तथा इन्दौर के डा. आर. डी. पुरोहित ने जलकुम्भी में वृद्धि हारमोनों का भी पता लगाया है, जिसको बीजों पर छिड़कने से बीजों के अंकुरन का प्रतिशत बढ़ जाता है। जलकुम्भी के जल को वाष्पित करके प्रोटीन एवं विटामिन भी प्राप्त किये जा सकते हैं। यही नहीं, इसके रस को वाष्पित कर अनेक तरह की धातुएं भी प्राप्त की जा रही हैं, जिनका उपयोग औषधि निर्माण में किया जा रहा है।

जलकुम्भी से उर्वरक की प्राप्तिः जलकुम्भी से अच्छी प्रकार की खाद भी बनायी जा सकती है, क्योंकि इसमें नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटाश आदि तत्वों की बहुलता रहती है। जलकुम्भी की खाद बनाने हेतु काम में आने वाले अन्य पदार्थो के साथ के गड्ढों में इसे परत दर परत डालकर खाद तैयार की जा सकती है। श्रीलंका में जलकुम्भी से बनी खाद को ''गारबेज जेम्स'' कहा जाता है,

पशुओं के चारा हेतु जलकुम्भी का उपयोगः जलकुम्भी का उपयोग चारा के रूप में पशुओंको खिलाने हेतु भी किया जा सकता है। चारा के रूप में हरी एवं सुखी, दोनों तरह की जलकुम्भी का उपयोग किया जा सकता है। जलकुम्भी की कुट्टी बनाकर अन्य सूखे चारे के साथ मिलाकर खिलाया जा सकता है। जलकुम्भी को खिलाने से पशुओं में पौष्टिकता की वृद्धि होती है एवं दुधारू पशुओं के दूध में भी वृद्धि होती है, किन्तु अधिक मात्रा में जलकुम्भी नहीं खिलाना चाहिए, अन्यथा कब्ज की शिकायत आ जाती है।

प्रदूषण निवारण में जलकुम्भी का उपयोगः जलकुम्भी का उपयोग अब प्रदूषण निवारण में भी किया जाने लगा है, क्योंकि इसके अन्दर पानी में स्थित भारी धातुओं को सोखने की क्षमता होती है, जो सीसा, ताम्बा, निकल, चांदी, वेनेडिया, जस्ता एवं क्रोमियम जैसी धातुओं को सोख लेती है। अमेरिका का अंतरिक्ष प्रशासन (नासा) अपनी फोटोग्राफिक प्रयोगशाला द्वारा उत्पन्न प्रदूषण को दूर करने के लिए जलकुम्भी का ही प्रयोग कर रहा है। आधे हेक्टेयर में फैली जलकुम्भी सम्भतः 1000 लोगों के मल - मूत्र वाला जल मात्र दो सप्ताह में शुद्ध कर सकती है।

उड़ीसा में स्थित, जे. के. पल्प एण्ड पेपर रिसर्च इन्स्टीच्यूट भी प्रदूशण को दूर करने के लिए जलकुम्भी का प्रयोग कर रहा है।

जलकुम्भी से अन्य उत्पादः जलकुम्भी से अन्य भी अनेक तरह की उपयोगी वस्तुओं का उत्पादन किया जाना सम्भव हो गया है। फिलीपाइनस में जलकुम्भी के रेशों से कपड़ा, कागज, जस्ता, फाइबर एवं इन्सूलेशन बोर्ड आदि भी निर्मित किया जा रहा है।

उपर्युक्त बातों से स्पष्ट है कि जलकुम्भी से होने वाली हानियों की अपेक्षा लाभ कहीं अधिक है। इसलिए देश के विभिन्न क्षेत्रों में फैले जलकुम्भी को अभिशाप की जगह वरदान में परिणित किया जा सकता है।

-गणेशकुमार पाठक
प्राध्यापक, भूगोल विभाग,
महाविद्यालय दूबेछपरा,
बलिया। (उ. प्र.) 277205

3. प्रवाल श्रेणियाँ

समुद्र में अति मनमोहक दृश्य उपस्थित करती प्रवाल - श्रेणियाँ, प्रवाल एवं शैवाल के कैल्सियम-धनी अस्थि पंजरो के अवशेष और उसके शरीर से निकलते चूनामय पदार्थों से बनी होती है। प्रशान्त एवं हिन्द महासागरों के गर्म जल में इनकी बहुलता है। इन श्रेणियों के निर्माण में संलग्न प्रवाल समुद्र के छिछले जल में 25° से. तापमान पर समुचित विकास दर्शाते हैं, परन्तु तापमान में एकाएक परिवर्तन होने या 18° से. से कम तापमान वाले जल में इनका अस्तित्व खतरे में पड़ जाता है। इनकी समुचित वृद्धि एव विकास हेतु पथरीले ठोस सतही आधार, सूर्य प्रकाश, एवं 35 ग्रा./ली. सांद्र नमकीन जल उपयुक्त होता है।

प्रवाल श्रेणियों का निर्माण द्वीप एवं ज्वालामुखी - श्रेणी के चारों तरफ प्रवाल एवं चूना प्रदान करनेवाले अन्य छोटे-छोटे जीवों द्वारा किया जाता है। सर्वप्रथम प्रवाल अपने शरीर के चारों तरफ कैल्सियम कार्बोनेट का रक्षा - कवच निर्मित करते हैं। मरणोपरान्त ये कड़े आवरण धीरे - धीरे समुद्र में स्थित ठोस आधार पर जमा होने लगते हैं। प्रारम्भिक अवस्था में प्रवाल - परिवार के सदस्य वृक्ष की शाखाओं जैसी संरचनाएँ उपस्थित करते हैं जो विभिन्न जीवों के कैल्सियम उत्पाद या चूना युक्त अन्य प्रकार के अवशेषों से भरते जाते हैं। प्रवाल के अतिरिक्त शैवाल, वाइयोजोवा, मोलस्था और अन्य सूक्ष्मदर्शीय प्रोटोजोवा (फोरामिनीफेरा) भी प्रवाल श्रेणियों के निर्माण में सक्रिय होते हैं। प्रवाल की गूतिकाओं को कैल्सियम युक्त पदार्थो से भरकर उन्हें ठोस आधार से जोड़ने का काम भी इन जीवों द्वारा ही किया जाता है। श्रेणियों के निर्माण में प्रवाल - परिवार पूर्वज-दर-पूर्वज भाग लेता है।

संरचना के आधार पर प्रवाल - श्रेणियाँ तीन प्रकार की होती हैं:- फ्रीनजिंग रीफ, बैरियर रीफ एवं एटॉल। फ्रीनजिंग रीफ का निर्माण द्वीप या ज्वालामुखी ग्रीवा के समीप होता है तथा ये श्रेणियाँ निम्न ज्वार के प्रभाव से ही अनावृत्त हो जाती हैं। ये मुख्य आधार के चारों तरफ बल्ले के समान होती हैं (चित्र-क) 1 पानी के बहाव के चलते कहीं-कहीं पर इनके नियमित क्रम में त्रुटि आ जाती है तथा इनके एवं ठोस सतह के बीच पानी आ जाता है। कुछ अन्तराल पर ठोस सतह कुछ ऊपर हो जाता हैं जिससे बैरियर रीफ का निर्माण होता है (चित्र-ख) 1 आस्ट्रेलिया का ग्रेट बैरियर रीफ प्रसिद्ध है जो कि २००० कि. मी. क्षेत्र में फैला है। बैरियर रीफ के समान ही एटॉल होते हैं मगर इनके बीच मुख्य सतह प्रलक्षित नहीं होता है। ये लैगून को चारों तरफ से घेरे रहते हैं जो कहीं-कहीं से निकास द्वारा समद्र से सम्बन्ध रखता है (चित्र-ग) 1 हवाई-द्वीप के पास पाया जानेवाला बिकनी एटॉल अन्तराष्ट्रीय ख्याति का एटॉल है।

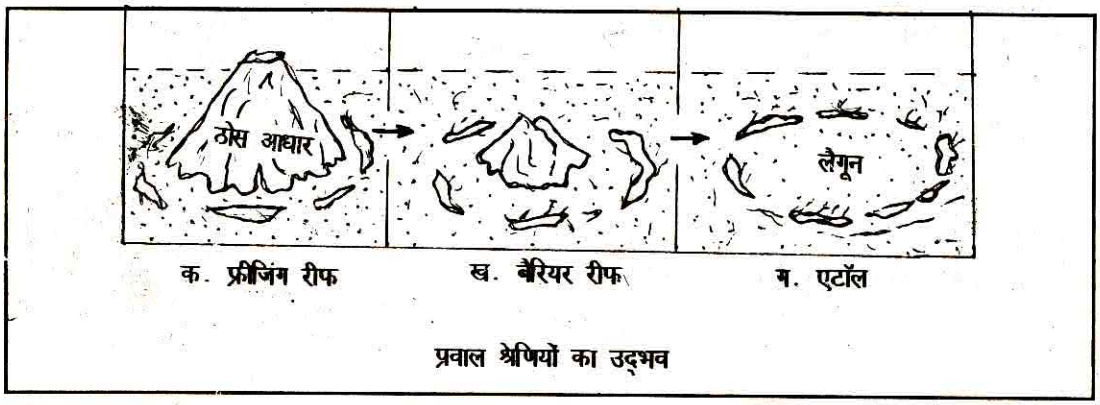

प्रवाल श्रेणियों का उद्भव

प्रवाल श्रेणियों के निर्माण से सम्बन्धित अनेक सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये हैं। चार्ल्स डार्विन के 'सबसिस्डेंस हाइपोथेसिस' के अनुसार प्रवाल श्रेणियों के निर्माण की प्रारम्भिक अवस्था में द्वीप या ज्वालामुखी - ग्रीवा के निकट फ्रीजिंग रीफ का निर्माण होता है जिस में प्रवाल सहित अनेकानेक जीव एवं शैवाल महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। विवर्तनिक क्रियाओं से प्रभावित होकर समुद्री सतह जब नीचे की ओर जाने लगती है तो फ्रीजिंग रीफ समुद्री जल-स्तर के समानान्तर रहने हेतु आगे की ओर अग्रसर होता है, मगर इसका मूल या जड़ नीचे गहराई की ओर चला जाता है। इसके परिणाम स्वरूप, ठोस आधार एवं प्रवाल - श्रेणी के बीच लैगून का निर्माण हो जाता है, जिसे बैरियर रीफ कहते हैं। पुनः समुद्री सतह, द्वीप या ज्वालामुखी - ग्रीवा के बहुत गहराई पर या अन्दर चलेजाने पर लैगून के बाहर सिर्फ गोलाकर रीफ ही रह जाता है जिसे एटॉल कहते हैं। लेकिन प्रवाल - श्रेणियों के निर्माण में यह आवश्यक है कि समुद्री सतह या ठोस आधार जितनी गहराई पर जायेगा उसी के अनुसार प्रवाल में वृद्धि होगी, क्योंकि प्रवाल श्रेणी अधिक गहराई पर सुरक्षित नहीं रह सकती। यदि एकाएक ठोस आधार नीचे चला जाय, तो प्रवाल श्रेणीकी वृद्धि रुक जाती है। यह सिद्धान्त हजारों मीटर की गहराई तक प्रवाल श्रेणी के अस्तित्व को स्पष्ट कर देता है जब कि प्रवाल 40-50 मीटर की गहराई के नीचे जीवित नही रहते हैं। फिर भी बैरियर रीफ एवं एटॉल के बीच में बने लैगून की चौड़ाई से सम्बन्धित निर्णायक स्पष्टीकरण देने में यह सिद्धान्त असफल है।

एक अन्य वैज्ञानिक, डैली की हिमनियंत्रण संकल्पना (ग्लेसियल कंट्रोल हाइपोथेसिस) के अनुसार हिम ही प्रवाल श्रेणी के निर्माण को नियंत्रित करता है तथा समुद्र के जल-स्तर में वृद्धि के कारण प्रवाल - द्वीप का निर्माण होता है। पलीसटोसिन काल में वर्फ के क्रमशः पिघलने से समुद्र के जल-स्तर में वृद्धि हुई जिसके परिमाण स्वरूप प्रवाल-श्रेणी का निर्माण हुआ। यदि मान लिया जाय कि हिम पिघलने से 120 मीटर तक समुद्र के जलस्तर में वृद्धि हुई तो भी हजारों मीटर गहराई तक प्रवाल - द्वीप की जड़ पाये जाने की सत्यता को यह सिद्धांत प्रमाणित नहीं करता।

मुरे एवं एगेसीज की 'विलयन संकल्पना' (सोल्यूशन हाइपोथेसिस) के अनुसार बैरियर रीफ का निर्माण प्रारम्भिक फ्रीजिंग रीफ के अन्दर उपस्थित घोल से होता है। प्रवाल का विकास समुद्रतट तथा ऊपर की दिशा में होता है तथा इसी क्रिया द्वारा आगे चल कर बैरियर रीफ का रूपान्तरण एटॉल में होता है। लेकिन यह सिद्धान्त भी सफलतापूर्वक निष्कर्ष पर नहीं पहुँचता। प्रवाल श्रेणियों के निर्माण से सम्बन्धित प्रतिपादित सभी सिद्धान्तों में डार्विन द्वारा - दिया गया सिद्धान्त अति उपयुक्त है।

समुद्र में आकर्षण दृश्य उपस्थित करने के साथ - साथ इन प्रवाल - श्रेणियों की उपयोगिता औद्योगिक परिक्षेत्र, चिकित्सा एवं ग्रहरत्न के रूप में है। प्राचीन काल में प्रवाल - भस्म पेट एवं हृदय की बीमारियों के लिए राम-बाण समझा जाता था। इनकी रसायनिक संरचना कैल्सियम कर्बोनेट है। अतः इनका उपयोग दन्त पाउडर, दन्तमंजन, सफेद रंग, धुलाई - पाउडर, स्याही इत्यादि में होता है।

❑

-डा. अखिलेश्वर तिवारी
60 शांतिनिकेतन कालोनी
पो. खामला रोड,
नागपुर-440025.

4. भूमि संरक्षण

पृथ्वी के ऊपर की पर्त जो सामान्यतः 3.50 फीट से 4.50 फीट तक मोटी होती है, मृदा कहलाती है। पौधों को जमने, पोषित करने, वृद्धि आदि के लिए आवश्यक पोषक तत्व इसी मृदा से प्राप्त होते हैं। मृदा की विभिन्न गहराइयों में बनावट भिन्न-भिन्न होती है। मृदा की सबसे ऊपरी पर्त पौधों के विकास के लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण होती है और यह शीर्ष मृदा के नाम से जानी जाती है जिस में खनिज लवण, ह्यूमस तथा विभिन्न सूक्ष्म जीव होते हैं जो इसकी उपजाऊ शक्ति को बढ़ाते रहते हैं।

तेज, वायु, वर्षा, बहते जल एवं आँधी आदि कारणों से शीर्ष मृदा का ऊपरी उपजाऊ भाग अपने स्थान से हट जाता है, अथवा अपनी उपजाऊ शक्ति खो देता है। मृदा की इस हानि को भूमि का अपरदन कहते हैं। किसी भी स्थान पर मिट्टी का निर्माण चट्टानों की टूटफूट से बने रेत और उसमें मिश्रित ह्यूमस के द्वारा होता है। मृदा में ह्यूमस के रहने एवं अधिक मात्रा में निर्मित होने से ही भूमि की उर्वरा शक्ति बनी रहती है।

प्रकृति में निम्नलिखित कारणों से मृदा की उपजाऊ शक्ति क्षीण हो जाती है:

1. **खनिज लवणों की समाप्तिः** मृदा पर उगने वाले पौधे मृदा से आवश्यक खनिज पदार्थ प्राप्त करते हैं। इस प्रकार, फसल काटने के बाद मृदा में बहुत से खनिज लवणों जैसे पोटेशियम, अमोनियम आदि के नाइट्रेट्स, फास्फेट्स, सल्फेट्स आदि की कमी हो जाती है। इससे मृदा की उपजाऊ शक्ति कम हो जाती है। सूक्ष्म जीव भी मृत कार्बनिक पदार्थों और कुछ आवश्यक अकार्बनिक पदार्थों की शक्ति को कम करने में सहायक होती है।

2.**निक्षालनः** मृदा लवणों की मात्रा जल के कारण भी कम हो सकती है। जल इन लवणों को घोलकर मृदा की निचली परतों में ले जाता है और शीर्ष मृदा की उर्वरा शक्ति कम हो जाती है। यह क्रिया निक्षालन (लीचींग) कहलाती है।

भूमि अपरदन को रोकने के लिए निम्नलिखित विधियाँ प्रयोग में लायी जाती हैं। इन विधियों द्वारा मृदा की क्षति को रोकना ही संरक्षण कहलाता है:

1. **कण्टूर कृषिः** पहाड़ी क्षेत्रों में भूमि के ढालू होने के कारण पानी के तेज बहाव में पानी के साथ बहकर मिट्टी निचले स्थानों में एकत्रित हो जाती है। इस प्रकार के अपरदन को रोकने के लिए ऐसे क्षेत्रों में शिखर से नीचे की ओर समकोण बनाते हुए गोलाई में जुताई की जाती है। इस प्रकार की जुताई करने से खेत में नालियाँ सी बन जाती हैं। इन नालियों में पानी एकत्रित रहता है। इस पानी को भूमि अवशोषित कर लेती है। नालियों के किनारे की मिट्टी बंध का कार्य करती है। इस प्रकार की कृषि कण्टूर कृषि कहलाती है। यह विधि भूमि की क्षति को रोकने में अत्यन्त सहायक है।

2. **पटट्रीदार कृषिः** यह विधि कम ढालू क्षेत्रों में प्रयुक्त की जाती है। इस विधि में भूमि को बहुत सी पट्टियों में विभक्त कर दिया जाता है। इन पट्टियों में दो प्रकार की फसलें बोई जाती हैं। ये फसलें हैं - पंक्ति फसल एवं ढकने वाली फसल। दोनों प्रकार की फसलों में ढकने वाली फसल या तो बहुवर्षीय होती है या कपास, आलू, मक्का आदि की फसलें जो भूमि को काफी हद

तक ढक लेती हैं तथा जल के बहाव को रोकती हैं। इन पौधों की जड़ें भूमि में मिट्टी को बांध देती है जिससे उसका अपरदन नहीं हो पाता। पंक्ति वाली फसल कोई भी अनाजवाली फसल हो सकती है। पट्टियां ढाल के साथ समकोण पर बनायी जाती हैं।

3. **भूमि में ह्यूमस की उपलब्धि एवं भूमि उर्वरता:** भूमि की उर्वरता को आवश्यकतानुसार विभिन्न प्रकार के उर्वरकों को मिलाकर उपलब्ध किया जा सकता है। इससे भूमि में पौधे अधिक उत्पन्न होंगे और मृदा में ह्यूमस की मात्रा में वृद्धि होगी। ह्यूयस में जल को रोकने की शक्ति होती है। इस प्रकार भूमि में ह्यूयम की अधिकता से भूमि के अपरदन को रोका जा सकता है।

4. **शस्यावर्तन:** इस विधि में विभिन्न फसलों को भूमि में एक विशेष प्रकार के फेर-बदल से बोया जाता है। एक ही फसल बार-बार बोने से भूमि में कुछ विशेष पोषक तत्वों की कमी हो जाती है। फलीदार पौधों, जैसे मटर कुल के पौधों की जड़ों में एक विशेष प्रकार के जीवाणु पाये जाते हैं जो नाइट्रोजन स्थरीकरण करते हैं। ये सहजीवी जीवाणु भी कहलाते हैं। इस प्रकार, फलीदार पौधों द्वारा भूमि में नाइट्रोजन की मात्रा पर्याप्त बनी रहती है, अतः दूसरी फसलों को फलीदार फसलों के साथ बारी-बारी से बोते हैं। इस प्रकार, एक फसल के बाद इसी प्रकार की दूसरी फसल को एकान्तरित करना ही शस्यावर्तन कहलाता है।

5.**जन रोपण:** यह एक प्रमाणिक तथ्य है कि जिन स्थानों पर वनों को नष्ट कर दिया जाता है या जहाँ वन कम मात्रा में पाये जाते हैं वहाँ भूमि का अपरदन अपेक्षाकृत अधिक होता है। अतः ऐसे स्थानों पर वृक्षारोपण द्वारा भूमि के अपरदान को कम किया जा सकता है। वृक्षों की जड़ें मिट्टी को बाँध देती हैं। वनरोपण द्वारा भूमि का अपरदन तो कम होता ही है, साथ ही इससे पर्यावरण का संतुलन भी बना रहता है।

6. **बाँध निर्माण:** तेज बहाव वाले अधिक जल को रोकने के लिए एवं उसे आवश्यकता के अनुसार काम में लाने के लिए बाँध बनाये जाते हैं। इस प्रकार, एकत्रित जल को नहरों एवं नालियों द्वारा इच्छित स्थान तक पहुँचाया जा सकता है। बाँध निर्माण द्वारा जल को रोकने से भूमि का अपरदन कम किया जा सकता है।

7. **वेदिका निर्माण:** पर्वतीय भागों में पूरे ढ़लान को छोटे-छोटे समतल खेतों में विभक्त कर दिया जाता है और इनकों सीढियों की तरह काट लिया जाता है। इस प्रकार से निर्मित वेदिकाओं के आधार पर नालियाँ होती हैं जिससे कि अतिरिक्ति जल को आगे ले जाया जा सके। ये वेदिकाऐं अतिरिक्त जल को अधिक मात्रा में नीचे जाने से रोकती हैं जिससे भूमि का अपरदन कम हो जाता है।

8. **चारागाहों का निर्माण:** पशुओं को चराने के लिए निश्चित चारागाहों का निर्माण करके भूमि का अपरदन रोका जा सकता है। जानवरों के चलने से कमजोर पौधे कुचल कर नष्ट हो जाते हैं तथा जानवरों के खुरों से मिट्टी दबकर ठोस हो जाती है। जानवरों द्वारा भूमि का अपरदन काफी अधिक मात्रा में हो जाता है। यदि जानवरों के चरने के लिए निश्चित चारागाह निर्मित कर दिये जायें तो भूमि के अपरदन को कम किया जा सकता है।

उपरोक्त विधियों के प्रयोग से भूमि का अपरदन रोका जा सकता है। भूमि का अपरदन एक राष्ट्रीय क्षति है। हमें भूमि के अपरदन को रोकने का हर संभव प्रयत्न करना होगा तभी हम राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्य को निभाने में सक्षम हो सकेंगे।

-प्रकाश चन्द्र अवस्थी
14, कुन्जनपरु
गंगोली हाट, (पिथौरागढ़)262522

5. वायु ऊर्जा

मानव की सारी आवश्यकताएं आज ऊर्जा से ही पूरी हो सकती हैं, चाहे वह मौलिक आवश्यकता हो या विलासिता संबंधी। कोयला, तेल, पेट्रोलियम पदार्थ इत्यादि जो आज कल ऊर्जा के स्त्रोत बने हुए है, वे कुछ ही वर्षो बाद समाप्त हो जाएंगे, अतः जरुरत इस बात की है कि हम अन्य स्त्रोतों की तलाश करें ताकि हम इस संसार का उपभोग कर सकें।

प्रकृति ने हमें अनेक अन्य ऊर्जा स्रोत दिये हैं जिनसे हम उपयोगी ऊर्जा दोहित करने में उतने सक्षम नहीं हुए हैं। कुछ ऐसे ही स्रोत है, वायु ऊर्जा, सौर ऊर्जा, और ज्वार ऊर्जा इत्यादि। उन्हें हम अपरंपरागत ऊर्जा स्रोत के नाम से जानते हैं। ये स्रोत ऊर्जा उत्पन्न कर सकते हैं, परंतु दुख इस बात का है कि हम इनका ऊर्जा में परिवर्तन दक्षता से नहीं कर पाते हैं।

आइए, जरा पवन ''देवता'' की ओर ध्यान दें, जो प्राण वायु बन कर हममें जीवन का संचार कर ही रहे है।

वायु शक्तिः एक परिचय

वैज्ञानिकों का मत है कि धरती पर हवा का प्रवेग, पृथ्वी तल के ऊष्मित होने से भिन्न-भिन्न स्थानों पर हवा के दबाव में अंतर के कारण होता है। इस प्रवेग का उपयोग हम ऊर्जा परिवर्तनार्थ कर सकते हैं।

वायु शक्ति के उपयोग का इतिहास बहुत पुराना है। यूनान के निवासियों ने सबसे पहले वायु शक्ति से घिरनी चलाकर लोगों को आश्चर्यचकित कर दिया था। आधुनिक वैज्ञानिक युग के पूर्व वायु शक्ति का उपयोग कृषि कार्यों में किया जाता था।

वायु ऊर्जाः एक वैज्ञानिक विश्लेषण

हवा का घनत्व एवं औसत वेग, अन्य द्रवों से जिनका उपयोग हम ऊर्जा के उत्पादन में करते हैं, काफी कम होता हैं । साथ ही, उनके वेग में मौसम के अनुसार काफी परिवर्तन होता हैं । यही तीन-चार बातें ऊर्जा परिवर्तन की राह में कांटे हैं ।

यदि वायु का घनत्व = D, वेग = V, टरबाइन का क्षेत्रफल = A, तथा प्राप्त ऊर्जा Q से निरुपित हो तो $Q = 1/2\ DAV^3$ होता है। इस समीकरण से पता चलता है कि वायु में निहित शक्तिउसके घनत्व तथा वेग पर निर्भर करती है। इसकी निर्भरता वेग पर बहुत ज्यादा है। यदि वेग को दुगुना कर दिया जाय तो निहित शक्ति आठ गुनी हो जाती है परन्तु, सारी निहित शक्ति का ऊर्जा में परिवर्तन असंभव है क्योंकि $Q = Q_L + Q_D$, जहां Q_Lकुल प्राप्त शक्ति, Q_Dघर्षण में बर्बाद शक्ति। परंतु $Q_L = I.W.\ dw/dt$

जहां, I = टरबाइन का जडत्व आघूर्ण तथा W कोणीय वेग है। यही ऊर्जा का उपयोग हम उपयोगी ऊर्जा (बिजली आदि) के उत्पादन में कर सकतें हैं।

अतः टरबाइन की दक्षता Q_L/Q।यह दक्षता अभी 15 से 18% ही हो पायी है। अतः कुल निहित ऊर्जा का 82% हम उपयोग नहीं कर पाते हैं। वैज्ञानिक इस उपाय की तलाश में हैं कि इस दक्षता को किस तरह बढाया जाय।

निम्नलिखित तालिका में हवा के वेग के साथ कुल परिवर्तित ऊर्जा को दिखाया गया है:

हवा का वेग (मील/घंटा)	शक्ति (कि. वाट)
8	0.2
10	0.8
12	1.9
14	3.0
16	5.0
18	8.0
20	9.0
22	10.0
24	10.0
26	10.0

तालिका से स्पष्ट है कि अधिक वेग से प्राप्त ऊर्जा स्थिर हो जाती है, क्योंकि अधिक ऊर्जा होने से कुछ अन्य व्यवधान उत्पन्न हो जाते है।

1961 में हिन्दुस्थान एरोनाटिक्स लि. बंगलूर नेWP1 एवं WP2 नामक दो पवन टरबाइन बनाये थे। विदेशों में अमेरिका और जर्मनी में पवन ऊर्जा के उपयोग पर काफी जोर दिया जा रहा है, विशेषकर अमेरिका के कुछ इलाके जैसे कैलिफोर्निया में इसका प्रयोग काफी हो रहा है। यहां वायुगति काफी है। भारत के भी कुछ इलाके में इसका उपयोग किया जा सकता है।

भारत एक कृषि प्रधान देश है जहां के80% लोग गाँव में निवास करते है। यहां वायु शक्ति का उपयोग कृषि-कार्य एवं घरेलू उपयोग के लिए किया जा सकता है। कर्नाटक, गुजरात, महाराष्ट्र, राजस्थान तथा अन्य पहाड़ी स्थानों पर पवन चक्की लगाकर ऊर्जा की एक बडी समस्या का हल किया जा सकता है। इन स्थानों पर औसतन 3 किलोवाट/घंटा मी.^{2} प्रतिदिन के हिसाब से ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है।

पवन ऊर्जा का उपयोग पम्प चलाने में हो सकता है। पवन-चक्की का उपयोग चारा काटने की मशीन, बैटरी चार्ज करने में एवं गोबर गैस को संपीडित करने में हो सकता है।

आज जरुरत इस बात की है कि वायु ऊर्जा पर अनुसंधान एवं खोज पर सरकार का विशेष ध्यान हो ताकि ऊर्जा के इस विशाल खजाने का उपयोग हम दक्षता से कर सकें।

-कुमार संजीव सिंह 'राकेश'
बैरो, सहरसा-852 123 (बिहार)

6. एक कोशीय प्रोटीन

भारत तथा अन्य विकासशील देशों की सबसे बड़ी कमी ऐसे खाद्य की है जिस में उत्तम खाद्य प्रोटीन की प्रचुरता हो तथा जो मनुष्यों तथा पशु द्वारा प्रयोग किया जा सके। यद्यपि मांस, मछली, अन्डे, दूध, दही तथा पनीर आदि में उत्तम खाद्य प्रोटीन काफी मात्रा में पायी जाती है, परन्तु अधिकतर लोग आर्थिक कठिनाइयों के कारण इन्हें भोजन के रुप में प्रयोग नहीं कर पाते हैं, तथा बहुत लोग इसका सेवन अपने धर्म के विरुद्ध मझते हैं। इस कारणों से अधिकतर भारतीयों के आहार में उत्तम प्रोटीन की पर्याप्त मात्रा नहीं रहती है। उत्तम प्रोटीन की कमी से प्रोटीन का कुपोषण उत्पन्न हो जाता है, और निम्नलिखित प्रभाव देखे जाते हैं:

(1) शरीर के भार में कमी,

(2) बच्चों में शारीरिक वृद्धि का रुकना,

(3) मांस पेशियों का ढीला तथा कमजोर हो जाना,

(4) रोगों से लड़ने की क्षमता का कम हो जाना जिससे संक्रामक तथा अन्य रोगों के आसानी से शिकार हो जाना, इत्यादि।

प्रोटीन के स्त्रोत

भोज्य प्रोटीन दो प्रकार की होती है; जान्तव प्रोटीन और वनस्पति प्रोटीन.जान्तव प्रोटीन वनस्पति प्रोटीन की अपेक्षा अधिक स्वास्थ्य वर्धक होती है। वनस्पति प्रोटीन हमें साधारण रुप से दालों, तिलहन, अनाजों, मेवो आदि से प्राप्त होती है। इसकी मात्रा हमारे भोजन में सीमित होती है क्योंकि इसमें अमीनो अम्ल बहुत कम मात्रा में होते हैं। इस लिए हमें उत्तम वनस्पति प्रोटीन के नये-नये वैकल्पिक स्त्रोतों की ओर ध्यान देना चाहिए।

एक कोशीय प्रोटीन

जीवाणुओं, इस्ट, शैवालों तथा कवकों की सुखाई हुई कोशाओं से प्राप्त प्रोटीन युक्त उत्पादों को एक-कोशीय प्रोटीन कहते है। जो मनुष्य तथा अन्य जंतुओं के उपयोग के योग्य, विषरहित और रोगरहित हो, ऐसी उत्तम एक-कोशीय प्रोटीन को प्राप्त करने के लिए सूक्ष्म जीवों (निम्नश्रेणी के पादपों) को एलकेन, हाइड्रोकार्बनो, मेथिल व एथिल एल्कोहॉल तथा पेट्रोलियम पदार्थो पर उपजाया जाता है, कार्बोहाइड्रेटों पर नहीं। एक-कोशीय प्रोटीन लाभ दायक स्वास्थ्यवर्धक

न्यूक्लिक अम्ल हानि कारक नहीं है, अतः जानवरों द्वारा प्रयोग में लाने के लिए एक कोशीय प्रोटीन से यह अम्ल हटाना जरुरी नहीं है। एक-कोशीय प्रोटीन जानवरों जैसे गाय, भैंस, बकरी, मुर्गी आदि के सेवन के लिए उपयुक्त है।

एक-कोशीय प्रोटीन का उत्पादन, उचित सूक्ष्मजीवों के चयन तथा उचित उपजाने वाले माध्यम के चयन पर निर्भर करता है। जलवायु, जैसे अच्छे या बुरे मौसम का प्रभाव या वर्षा का न्यूनाधिक होना एक कोशीय प्रोटीन के उत्पादन पर कोई प्रभाव नहीं डालता।

यीस्ट नामक सूक्ष्मजीव एक कवक या फफूंद है जो एक बड़े पैमाने पर उपजाया जा सकता है तथा जिससे एक-कोशीय प्रोटीन बहुत बड़ी मात्रा में प्राप्त की जा सकती है। साधारणतया यीस्ट को शर्करायुक्त पदार्थो पर उपजाया जाता है, जैसे शीरा आदि इन पर उपजकर यीस्ट प्रोटीन व विटामिन आदि उत्पन्न करती हैं। यीस्ट द्वारा उत्पन्न प्रोटीन की तुलना जान्तव प्रोटीन से की जा सकती हैं। चैम्पग्नेट नामक वैज्ञानिक ने दिखाया है कि सूक्ष्मजीवों को कार्बोहाइड्रेट के बजाय हाइड्रोकार्बन पर भी उपजाया जा सकता है, परन्तु जब यीस्ट को कार्बोहाइड्रेट पर उपजाया जाता है, तो कार्बोहाइड्रेट को पानी में घोलकर नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटेशियम प्रदान करने वाले पदार्थ व आवश्यक विटामिन उसमें मिलाये जाते हैं। इस सारे घोल में से वायु गुजारते हैं, ताकि आक्सीजन यीस्ट को प्राप्त हो सके और घोल में सब वस्तुएं ठीक से मिल सकें। इस घोल के तापमान तथा अम्लीयता का नियन्त्रण ठीक से किया जाता है, ताकि यीस्ट का प्रजनन भली प्रकार से हो सके। फिर, यीस्ट कोशाओं को छान कर अलग कर लिया जाता है। सूखी हुई यीस्ट खाने के काम आती है, जिसमें लगभग 50% प्रोटीन होती है। सूखी हुई यीस्ट कोशाओं का प्रयोग आईस्क्रीम, सूप आदि में करते हैं।

यीस्ट को हाइड्रोकार्बन पर उपजाने में कई कठनाइयां आती हैं। जैसे हाइड्रोकार्बन पानी में घुलनशील नहीं होते हैं, इसलिए पानी और हाइड्रोकार्बन के मिश्रण को लगातार तेजी से हिलाना पड़ता है। हाइड्रोकार्बन में आक्सीजन बिल्कुल नहीं होती है, परन्तु कार्बोहाइड्रेट में होती है। इसी कारण, जब हाइड्रोकार्बन प्रयोग किये जाते है तो आक्सीजन की अधिक जरुरत पड़ती है तथा तीन गुनी अधिक हवा मिश्रण में से गुजारनी पड़ती है। मिश्रण का तापमान बढ़ जाता है अतः उसे ठन्डा रखने का प्रबंध करना पड़ता है। परन्तु यीस्ट का हाइड्रोकार्बन पर उत्पादन कार्बोहाइड्रेट की अपेक्षा लगभग दुगुना होता है।

चैम्पग्नेट ने यह भी बताया है कि पेट्रोलियम पदार्थो से प्राप्त हाइड्रोकार्बनों पर सूक्ष्मजीव अधिक अच्छी तरह उपजते हैं। पेट्रोलियम मुख्यतया एलकेन हाइड्रोकार्बन का मिश्रण होता है। अलग-अलग प्रकार के सूक्ष्मजीव उपज कर अलग-अलग प्रकार की प्रोटीन बनाते है, जिन्हें सुखाकर एक कोशीय प्रोटीन प्राप्त होते है। हाइड्रोकार्बन पर उपजी यीस्ट में गन्ध कम होती है। हाईड्रोकार्बन पर उपजने से सूक्ष्मजीव बहुत जल्दी उपजकर बढ़ते हैं। लगभग दो घन्टे में सूक्ष्मजीवों का भार दुगुना हो जाता है। सूक्ष्मजीवों को हौज आदि में हाइड्रोकार्बन डाल कर आसानी से उगाया जा सकता है। इस विधि में सूक्ष्मजीवों को मिट्टी, धूप, वर्षा और मनुष्य के शारीरिक परिश्रम की मदद की आवश्यकता नहीं पड़ती है। इस प्रकार से प्राप्त एक कोशीय प्रोटीन में विटामिन-बी लाईसीन काफी मात्रा में पाये जाते हैं। अतः एक-कोशीय प्रोटीन को लाईसीन की कमी वाले अनाजों के साथ प्रयोग किया जा सकता है।

इस प्रकार प्रोटीन की कमी को पूरा करने में एक कोशीय प्रोटीन काफी सहायक सिद्ध हो सकती है।

-डॉ. पी. डी. माथुर
डी-10/2, पेपर मिल कालोनी,
निशात गंज, लखनऊ-226006.

7. बढ़ता खतरा तेजाबी बरसात का

तेजाबी बरसात अथवा अम्ल वर्षा का अर्थ उस बरसात से है जिसके पानी में तेजाब (एसिड) मिला रहता है। वैज्ञानिकों के अनुसार जब बारिश के पानी में अम्लता (तकनीकी शब्दावली-पी. एच. मान) का स्तर 5.6 से कम हो जाता है तो ऐसी बरसात को तेजाबी बरसात (एसिड रेन) कहते हैं। अम्ल वर्षा में सल्फ्यूरिक अम्ल तथा नाइट्रिक अम्ल का प्रमुख योगदान रहता है। ये दोनों ही अम्ल औद्योगिक उत्पादनों में छोड़े गये सल्फर डाइआक्साइड तथा नाइट्रोजन आक्साइड की वाष्प कणों से हुई रासायनिक क्रिया के परिणाम स्वरुप बनते हैं। वे ही जल में घुलकर बरसते हैं।

इस वर्षा का भूमि वनस्पति, कृषि और इमारतों पर अनेकों प्रकार से बुरा प्रभाव पड़ता है। पश्चिमी देशों में नदियों और नालों में इसके सबसे अधिक भयावह परिणाम देखने को मिले है। इसके कारण स्केडिनोबिया, उत्तरपूर्वी अमेरिका, कनाडा और दक्षिण पश्चिमी स्काटलैंड के कई भागों में सैंकड़ों झीलें जहरीली हो गयी हैं।

कनाडा के टोरंटो नगर से 400 कि.मी. दूर विश्व का प्रमुख निकेल उत्पादक क्षेत्र है। यहां कच्चे पदार्थों के रुप में लोहा, कॉपर और निकेल सल्फाइड उपलब्ध हैं। जिनके दहन क्रिया के फलस्वरुप सल्फरडाई ऑक्साइड के बादल उस क्षेत्र में सदा छाये रहते हैं। फलतः होने वाली वर्षा में अम्लीयता अत्यधिक रहती है। उस क्षेत्र की उर्वराभूमि इस कारण तेजी से अपनी उर्वरता गंवाती जा रही है। एसिड एवं ठोस धातुओं के कारण मिट्टी विषैली हो चुकी है। यहां प्रतिदिन 2500 टन सल्फरडाई आक्साइड वायुमंडल में फेंकी जाती है। परीक्षण करने वाले विशेषज्ञों का कथन है कि आने वाले दिनों में उस क्षेत्र में होने वाली वर्षा में अम्ल की मात्रा इतनी बढ़ जायेगी कि वृक्ष, वनस्पतियों तथा जीवधारियों का जीवन इस क्षेत्र से हमेशा के लिए मिट सकता है। केन्द्रीय यूरोप में लगभग 25 लाख से लेकर 50 लाख एकड़ तक वन क्षेत्र नष्ट हो चुके है। उल्लेखनीय है कि वनों का यह विनाश कटाई से नहीं, तेजाब मिश्रित वर्षा जल के कारण हुआ है, जो अब अनेकानेक सम्भावित खतरे की ओर संकेत कर रहा है। उपरोक्त तथ्यों का रहस्योद्घाटन कनाडा विश्वविद्यालय के प्रो. हर्बड डब्लू बोगेलमन ने किया है।

इस समय तेजाबी बरसात से प्रभावित क्षेत्रों में कनाडा, अमेरिका और स्वीडन सबसे आगे है। कनाडा और अमेरिका दोनों ने एक-दूसरे पर यह आरोप लगाया है कि तेजाबी बरसात के कारण प्रदूषक तत्वों को वायुमंडल के माध्यम से वे एक-दूसरे के देश में फैला रहे है। कनाडा को अमेरिका स्थित पेट्रो-रसायन कारखानों के प्रदूषण से उत्पन्न तेजाबी बरसात का प्रकोप सहना पड़ रहा है। दूसरी ओर स्वीडन सहित कई यूरोपीय देशों ने इंग्लैंड और फ्रांस पर आक्षेप लगाया है कि उनके कारखानों से निकलने वाले विषैले धुएं को हवाएं उनके यहां उड़ाकर लाती है। फलस्वरुप इन देशों का पर्यावरण तो दूषित होता ही है साथ ही तेजाबी बरसात का प्रकोप भी वे झेलते है, लेकिन कभी-कभी जो धुंआ जहां पैदा होता है वहां से दूर नहीं जा पाता और कुछ विशेष वातावरणीय दशाओं में वह अपने उत्पादन स्रोत के आस-पास ही बरसने लगते हैं।

तेजाबी बरसात से तात्कालिक खतरों के अलावा अनेकानेक खतरनाक सम्भावनाएं जुड़ी हुई है। तेजाबी वर्षा में समाहित नाइट्रोजन ऑक्साइड, सल्फर डाईऑक्साइड व सल्फेट ऑयन के लम्बे समय तक अन्तः श्वसन से दमे समकक्ष श्वसन रोग उत्पन्न होते है। अम्ल वर्षा का पानी पीने से अनेकों प्रकार के पाचन तथा रक्त सम्बंधी विकार पैदा होते हैं।

यह बारिश भूमि की उर्वरता को भी नष्ट कर देती है तथा उसे ऊसर बना देती है। मिट्टी के आवश्यक पोषक तत्व कैल्शियम, मैग्नेशियम, फॉस्फोरस आदि नष्ट हो जाते हैं। यदि पी. एच. दर अत्यंत न्यून हो जाय तो नाइट्रोजन, पोटेशियम, सल्फर जैसे तत्व भी मिट्टी से समाप्त हो जाते है। ऐसी भूमि में यदि खेती की जाय तो

भी इसमें विषाक्तता आ जायेगी जो अनगणित रोगों को जन्म देगी।

तेजाबी बरसात जन जीवन को भी प्रभावित कर रही है लेकिन वन्य जीवन पर इसका प्रभाव उतना स्पष्ट नहीं दिखाई देता जितना वह मछलियों पर दिखाई देता है। मंगलूर (कर्नाटक) के मछली कालेज के प्रो. सी. वी. मोहन का मानना है कि झीलों के पानी के अम्लीकरण के फलस्वरुप उनमें मछलियों की संख्या क्रमशः विलुप्त हो जाती है क्योंकि उसके असर से मछलियों की प्रजनन शक्ति प्रायः समाप्त हो जाती है। साथ ही हमेशा तेजाब युक्त पानी में रहने से मछलियों के विकास की गति भी धीमी पड़ जाती है और इनमें रोगों से लड़ने की शक्ति भी खत्म हो जाती है।

हमारे देशमें इस समस्या का कोई विस्तृत अध्ययन तो नहीं हुआ है फिर भी अब तक हुए सीमित अध्ययनों से पता चला है कि हैदराबाद, बम्बई, कलकत्ता जैसे महानगरों में यह समस्या विकसित रुप धारण कर रही है तथा दिल्ली, कानपुर, अहमदाबाद जैसे औद्योगिक नगरों के वायुमंडल में सल्फरडाई आक्साइड और नाइट्रोजन आक्साइड की मात्रा में तेजी से वृद्धि हो रही है। 1983 में तो दिल्ली क्षेत्र में हुई वर्षा में भी अम्ल की मात्रा पाई गयी थी, स्वाभाविक है जिसमें अब काफी वृद्धि हो गयी होगी। कानपुर के निकट गंगाजल में भी अम्ल की मात्रा एक जांच के दौरान पाई गई है।

उस्मानिया विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों के एक दल द्वारा किये गये अध्ययन के अनुसार हैदराबाद के बरसात के पानी में तेजाब की मात्रा वांछित स्तर से कहीं अधिक पाई गयी है। जिसके परिणामस्वरुप जलचर सम्पदा तो नष्ट हो ही रही है इंसानी त्वचा पर भी इसका घातक प्रभाव पड़ रहा है। चूंकि तेजाबी बारिश औद्योगिकीकरण की देन है और हैदराबाद शहर के आस-पास सल्फर पर आधारित कई दवा निर्माण कंपनियां है। परिणामस्वरुप शहर के पर्यावरण में सल्फरडाइ ऑक्साइड की अत्याधिक मात्रा पाई गयी है।

'भारत में पर्यावरण की स्थिति' नामक एक रपट के अनुसार 1974 में बम्बई के ट्राम्बे तथा चैम्बूर इलाकों में किये गये अध्ययन में बरसात में पी. एच. मान क्रमश 4.5 तथा 4.8 पाया गया। उल्लेखनीय है कि इन क्षेत्रों में रसायन उद्योग काफी संख्या में हैं जो पर्यावरण में हररोज टनों के हिसाब से तेजाबी बरसात के कारकों को छोड़ते है।

इसी रपट के अनुसार कलकत्ता और हावड़ा की वायु में 5.57 टन धूल, 122 टन सल्फरडाई आक्साइड, 440 टन कार्बन मोनोक्साइड, 70 टन नाइट्रोजन आक्साइड और 120 टन हाइड्रोकार्बन होता है और यह मात्रा दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। इन तथ्यों से स्पष्ट है कि अब हमारे देश के वायुमंडल की स्थिति भी दूसरे यूरोपीय देशों जैसी ही विषाक्त बनती जा रही है और आने वाले समय में इसके और अधिक गंभीर होने की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता है। अतः इस दिशा में कुछ कारगर कदम उठाने की आवश्यकता है। चूंकि चिमनियों से निकलने वाला कोयला का धुंआ ही अम्ल वर्षा का मुख्य कारण है इसलिए जलाने से पहले इस कोयले को धो लिया जाय तो इस प्रकोप को कुछ हद तक कम किया जा सकता है। साथ ही ऊंची चिमनियों से धुंए के साथ निकलने वाले गंधक के डॉयोक्साइड की मात्रा को घटा कर एक तिहाई किया जाना चाहिये और इस पर कड़ा नियंत्रण रखा जाय।

-जगमोहनसिंह रौतेला
पो. सत्यनारायण मंदिर,
देहरादून-249204

(पृष्ठ 23 से आगे)

406 मेगाहर्ट्ज का एक खोज और बचाव (सर्च एण्ड रेस्क्यु) नीतभार

इस के अतिरिक्त रेडियो संचार जाल बिन्दुओं से बहुबिन्दुओं सेवाओं, पुन प्रसारण, मानक समय आवृति समाकलन, आपदा चेतावनी रेडियो संकेत वितरण तथा मौसम विज्ञानीय आंकडा वितरण आदि सेवाओं के लिए कम से कम 32 निम्न स्तरीय वाहक (लो लेवर कैरिअर) उपलब्ध होगें।

इन अंतरिक्षयानों का प्रमोचन आरियन-4 राकेट द्वारा किया जायेगा। पहली उडान मार्च 1992में किये जाने का लक्ष्य रखा गया है।

❑

बाल विज्ञान

तारों में भी होता है जन्म और होती है मृत्यु

एम. ए. हन्फी
प्रवक्ता, राजकीय उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय,
राजनगर, छतरपुर (म. प्र.)

आकाश में देखने पर हम एक बार में 6000 से अधिक तारे नहीं देख पाते। अगर धरती के ऊपर हवा का सागर नहीं होता तो हम नग्न आंखों से भी लाखों तारे देख सकते। आंखों से देखने पर जहां पर आसमान खाली दिखता हैं वहां पर भी दूरबीन की मदद से अनेक तारे दिखाई देने लगते हैं। दूरबीन जितनी बड़ी होगी तारे भी उतने ही अधिक दिखाई पड़ेंगे। अमेरिका में स्थित 200 इंच व्यास वाली दूरबीन जो 25करोड़ रुपये से भी अधिक के लागत की बनी हुई है, से10 अरब तारे देखे जा चुके हैं। हम केवल वे ही तारे देख सकते हैं जिनका प्रकाश हमारी पृथ्वी तक पहुंच सकता है।

तारे वे आकाशीय पिंड हैं जिनमें स्वयं का प्रकाश होता हैं। हमारी पृथ्वी के सबसे निकट जो तारा है वह सूर्य है। आकाश में अन्य तारे भी सूर्य के समान जलते हुए पिंड है। उनमें से कई तो सूर्य से हज़ारों लाखों गुणा बड़े हैं परन्तु उनकी दूरी इतनी अधिक होती हैं कि वे हमें आकार में बहुत छोटे दिखते हैं।

आइए, देखें इन तारों का आखिर जन्म कैसे हुआ। वैज्ञानिको का विश्वास है कि आज से पांच - दस रब साल पहले ब्रह्माण्ड का आज जैसा रूप नहीं था। उस समय न आकाश गंगा परिवार था, न नीहारिकाएं थी, न सूरज न ग्रह। तारे विहीन आकाश में उस समय एक गैस फैली हुई थी - वह बुनियादी गैस थी हाइड्रोजन। यह गैस बादलों के रूप में थी और बहुत तेजी से घूम रही थी। इस घूमने के कारण इसमें लहरें पैदा हो गई और भंवर पड़ गए ठीक उसी तरह जैसे नदी के तेज़ बहते पानी में पड़ जाते हैं।

इन भंवरों के बीच में जो हाइड्रोजन गैस आयी उसके कण आपसी खिंचाव के कारण एक दूसरे की ओर आने लगे। इस क्रिया में कहीं पर गैस के कण घने हो गए कहीं पर छिछले। नतीजा यह हुआ कि गैस कई टुकड़ियों में बंट गई। यही टुकड़े नीहारिका कहलाए। नीहारिकाएं भी तेज़ी से घूमती रहीं जिससे उसके कण सिमट सिमट कर एक दूसरे के पास आते गये। ये रंगीनुमा नीहारिकाएं और भी सिमटी चली गई और धीरे धीरे अधिक छोटी, चपटी और गर्म हो गयीं। इसका नतीजा यह हुआ कि उनके बीच के भाग से गैस के कण छिटक कर इधर उधर जाने लगे। बाहर छिटकी हुई यह गैस गोलाई में नीहारिकाओ के गिर्द घूमती रही। छिटकी हुई गैस के इन पदार्थो ने दो सर्पिलों का रूप धारण कर लिया इन सर्पिलों के भी तेजी के घूमने के कारण भंवर पड़ने लगे। इन भंवरों के बीच में गैस के कम भारी मात्रा में इकट्ठा होने लगे। कण के आपस में टकराने से गर्मी बढ़ी। यह गर्मी हाइड्रोजन बम के छूटटे समय उत्पन्न गर्मी के बराबर थी। इस गर्मी में हाइड्रोजन गैस हीलियम में परिवर्तित होने लगी। गैसों के भवरों के बीच भी यही काम हुआ। अत्यधिक गर्मी के कारण ये भंवर चमकने लगे और तारे बन गए सर्पिल नीहारिका से बना यह तारा नारंगी के आकार का था, यह अति विराट तारा कहलाया। इस तारे में हाइड्रोजन लगातार हीलियम में परिवर्तित होती रहती है इसे हाइड्रोजन ज्वलन काल कहते हैं। इस प्रावस्था को ''मुख्य अनुक्रम तारे'' भी कहते हैं।

अंततः मुख्य अनुक्रम तारा अपने केन्द्रीय भाग के सभी हाइड्रोजन का उपयोग कर लेगा। इस स्थिति में पहुंचने में तारे को 100,000 लाख वर्ष लगते हैं।

जब सारी हाइड्रोजन हीलियम में बदल जाती है

तब यह तारा अपने ही गुरूत्वाकर्षण के कारण सिकुड़ने लगता है इससे भीतरी भाग की हाइड्रोजन भी हीलियम बन जाती है। तब क्रोड की हुयी क्षति पूर्ति हेतु बाहरी तह अपने पुराने साइज़ की अपेक्षा सौ गुना फूल जाती है। अब यह तारा श्वेत या पीले की जगह सूर्य की तरह फीके लाल रंग का हो जाता है। इस प्रकार फूले तथा लालिमा लिए हुए तारे को रक्त दानव कहा जाता है। रक्त दानव की बाहरी गैसें इतनी विरल होती हैं कि व अंदर और बाहर होती रहती हैं। जिससे लगभग एक साल तक तारे की चमक घटती बढ़ती रहती है। अत्यधिक स्थूल तारे फैलकर अपेक्षाकृत अधिक बड़े हो जाते हैं इन्हे अतिदानव तारा कहते हैं।

रक्तदानव की प्रावस्था के बाद तारे का अंतिम भविष्य उसके अपने द्रव्यमान पर निर्भर करता है। यदि वह सूर्य के बराबर द्रव्यमान या उससे मिलता जुलता है तब वह अपने बाहरी स्तर को निकाल फेंकेगा और श्वेत वामन तारा बन जाएगा। इसके आंतरिक भाग में कोई नाभिकीय अभिक्रिया नहीं होती और आगे चलकर समय बीतने पर इसकी ऊर्जा अंतरिक्ष में विकिरित हो जाती है और तारा ठंडा व काला पड़ जाता है इसे कृष्ण वामन कहते हैं। यही इस तारे की मृत्यु है।

यदि मुख्य अनुक्रम तारा साइज़ में बड़ा है (सूर्य से तीन गुना बड़ा) तो यह फूलकर रक्त दानव की स्थिति के बाद विस्फोटित हो जाता है। इस विशाल विस्फोट से सुपरनोवा बनता है। सुपरनोवा में थोड़े समय के लिए क़रोड़ो सूर्य से भी अधिक चमक आ जाती है। इस क्रियाके बाद इसका क्रोड संकुचित होने लगता है यह संकुचित होते होते २० किलोमीटर व्यास तक आ जाता है। इलेक्ट्रॉन और प्रोटॉन इस क्रिया में आपस में मिलते हैं और न्यूट्रान बनाते हैं। अब यह न्यूट्रान तारा कहलाता है। न्यूट्रान तारों का घूर्णन होने पर उनसे विकिरण होता है जो कौंध सा दिखलाई पड़ता है। कैम्ब्रिज के रेडियो खगोलज्ञों ने सबसे पहले 1967 में विकिरण के इन स्पंदों (पल्स) का अनुभव किया और उनके स्त्रोतों को 'पल्सर' की संज्ञा दी।

मुख्य अनुक्रम तारा जो सूर्य से 1.4 गुना होता है- रक्त दानव बनने के पश्चात श्वेत वामन बनता है। और जो मुख्य अनुक्रम तारा सूर्य से 3 गुना बड़ा होता है व रक्त दानव बनने के पश्चात सुपरनोवा बनता है, अंत में न्यूट्रान तारा या पल्सर बन जाता है। तब इसका धनत्व होता है 10^{12}-10^{15} ग्राम/घन से.मी.। परन्तु जो मुख्य अनुक्रम तारा सूर्य मे 4 गुना अधिक हो तो वह पहले तो महारक्त दानव तारा बनेगा, फिर जो सिकुड़ना प्रारंभ करेगा तो सिकुड़ते सिकुड़ते क्रोड कुछ किलोमीटर व्यास वाला रह जाएगा, इस सिकुड़ने से उस पर लगने वाला गुरुत्वाकर्षण बल अनन्त हो जाएगा। वह त्रिज्या जिसपर गुरुत्वाकर्षण बल अनन्त हो जाता है स्वाशीज़ त्रिज्या कहलाती है। स्वाशीज़ त्रिज्या प्राप्त करने वाले गोले में प्रकाश की किरण गुरुत्वाकर्षण को भी तोड़कर बाहर नहीं निकल पायेगी अब यह पिंड ब्लैक होल कहलाएगा। इन सीमाओं की जानकारी का श्रेय भारतीय वैज्ञानिक सुब्रमण्यम चंद्रशेखर को जाता है। इस संबंध में दिए गए सिद्धान्त का नाम 'चंद्रशेखर का सीमा सिद्धान्त' है।

ब्लैक होल बनने पर चूंकि प्रकाश की किरणें भी उसकी ओर से अत्यधिक गुरुत्वबल के कारण बाहर नहीं आ पाती अतः वह अदीप्त हो जाता है। अत्याधिक विशालकाय तारों की यह अंतिम परिणति जिसमें वे प्रकाशहीन और अदीप्ति हो जाते हैं उनकी मृत्यु है।

श्वेत वामन तारे जो छोटे रक्तदानव की अंतिम परिणति है, का आकार जब सैकड़ों गुना कम होता है तो श्वेत प्रकाश देते हुए बिखर जाता हैं। इस प्रकार इनका पदार्थ फिर उसी बादल में मिल जाता है जिससे वे पैदा हुए थे।

आकाशगंगा परिवारों में इसी तरह नए सितारे पैदा होते और पुराने सितारे मरते रहते हैं। पैदा होते समय सितारे का रंग लाल होता है और मरने के समय सफ़ेद। इस प्रकार ब्रह्माण्ड में सितारों के पैदा होने और मरने का काम बराबर चलता रहता है।

❑

बाल विज्ञान

हमारी आँखों की बनावट

प्रमोद माथुर 'चित्रांश'
शकुन्तला - भवन, छोटा बाजार
साँभर लेक, जयपुर-303604 (राज.)

हमारी आँखों की बनावट बिल्कुल फोटो-कैमरे के समान है। कैमरे के सामने वाले भाग में एक लेन्स लगा होता है, बाहरी वस्तुओं की छाया इसी लेन्स से होकर कैमरे के भीतर एक स्थान पर गिरती है और वहीं पर स वस्तु का चित्र खिंच जाता है। प्रकाश कम होनें से ह चित्र स्पष्ट या अस्पष्ट हो सकता है, अतः प्रकाश को केवल आवश्यकता के अनुसार कम या अधिक पर्याप्त मात्रा में अन्दर पहुँचने देने के लिए कैमरे के सामने एक छिद्र बना होता है, जोकि इच्छानुसार छोटा या बड़ा कया जा सकता है।

इसी छिद्र से होकर बाहर की वस्तु की जो छाया कैमरे के भीतर पहुँचती है, वह काँच की एक मसाला गी हुई प्लेट या फिल्म पर गिरती है और वह वहीं पर उभर आती है। कैमरे का संपूर्ण भीतरी भाग काले रंग से रंगा होता है।

यही बातें हमारी आँखों में भी होती हैं। इसमें भी सामने की तरफ एक लेंस लगा रहता है, जो भीतर की तरफ एक काले पर्दे से ढ़का रहता हैं। उसे हम आँख की पुतली कहते है। उसी पर्दे के बीच में एक नन्हा सा गोल - गोल बिन्दु भी दिखाई देता है। जिसे आँख का तारा हा जाता है। वास्तव में यह बिन्दु एक छेद है जो काले रंग का दिखाई देता है, क्योंकि आँख का अन्तःपटल (भीतरी पर्दा) बिल्कुल काला होता है। जैसे एक घर के भीतर का अंधकार एक छोटे से छिद्र द्वारा काले रंग का दिखाए देता है, उसी प्रकार हमारी आँख का तारा भीतर काले रंग को प्रकट करता है।

तेज प्रकाश में यह छिद्र (तारा) पुतली के पर्दे सहित सिकुड़कर छोटा सा हो जाता है। इसी छिद्र के द्वारा लैंस को पार करके बाहरी वस्तुओं को प्रतिविम्ब अर्थात् चित्र आँख के अन्दर पहुँचता है और वहाँ के पिछले भाग में एक दृष्टि पटल (रेटिना) पर गिरता है जिसे हम फोटो की प्लेट या फिल्म कह सकते हैं। इस पर्दे का संबंध स्नायुओं द्वारा मस्तिष्क से रहता है, जिससे पर्दे पर चित्र गिरते ही तुरन्त उसकी सूचना मस्तिष्क को प्राप्त होती है और मस्तिष्क जान लेता है कि आँखो के सम्मुख क्या वस्तु है?

जिस प्रकार फोटो - कैमरा लकड़ी, कपडे या चमके से मढ़े हुए ढांचे में सुरक्षित रहता हैं, वैसे ही हमारी आंखे भी हड्डियों से बने ढांचे में सुरक्षित है तथा ऊपर से पलकें उनकी सुरक्षा करती हैं । कैमरे के मुँह को चित्र खींचते समय सीधान पर रखने के लिए कुछ ऊपर-नीचे हटाने की व्यवस्था रहती है, उसी प्रकार हमारी आंखो की पुतलियाँ भी इच्छानुसार ऊपर-नीचे या उधर-उधर घुमायी जा सकती है। इस व्यवस्था से हम बगैर सिर घुगाये ही इधर-उधर की वस्तुओं को देख सकते है। प्रत्येक आँख में इस व्यवस्था हेतु 6-6 मांसपेशियां लगी रहती है।

आदमी के बनाये कैमरे में एक प्लेट पर केवल एक ही चित्र खिंच सकता है तथा दूसरा चित्र लेने के लिए उसमें दूसरी प्लेट भरने की आवश्यकता होती है परन्तु हमारी आँख के दिव्य कैमरे में एक ही प्लेट जीवन पर्यन्त सभी प्रकार के चित्र खींचने के लिए पर्याप्त होती है।

पलकों पर बरौनी के बालों से भी आँखो की रक्षा होती है। इसके कारण बाहर से धूल, मिट्टी, कीट आदि आंखो के अन्दर नहीं जाने पाते और आँखो को साफ रखने के लिए ऊपरवाली पलकों के अन्दर पानी निकालनेवाली अश्रु ग्रन्थि भी लगी रहत है। ❑

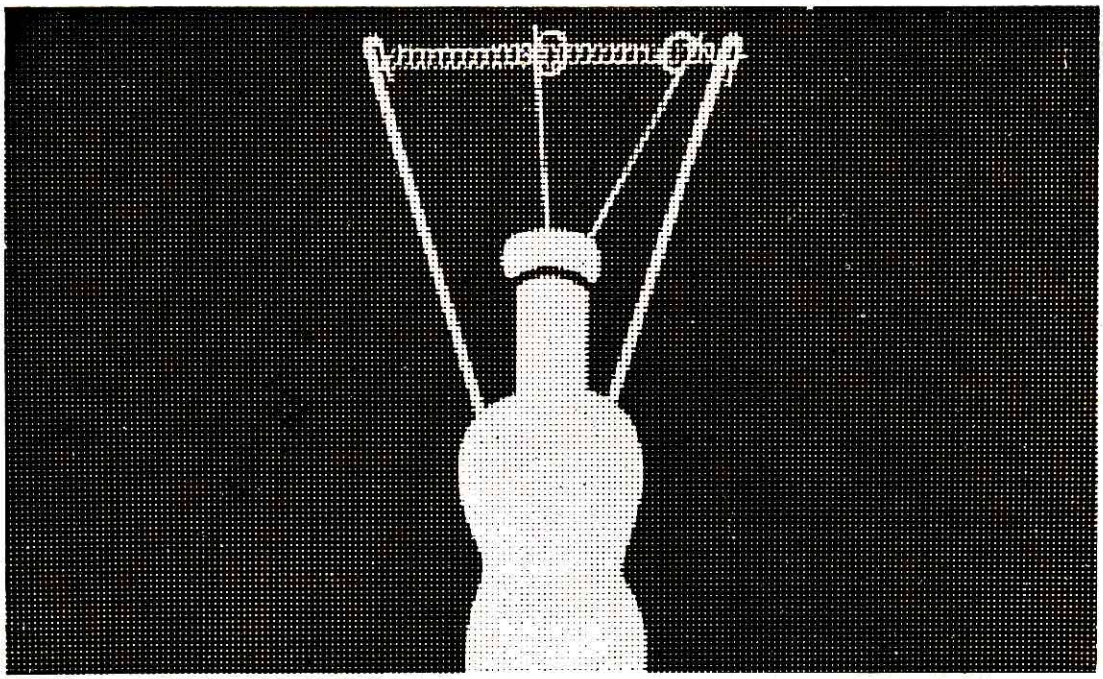

Midhani. Lighting the path to self-reliance in special metals and alloys.

Midhani is India's first and only special alloys plant manufacturing the entire range of special metals and alloys needed by various industries.

For instance, molybdenum, tungsten and high purity nickel for the lamp industry.

The basic production technology has been acquired from reputed foreign organisations like Creusot-Loire and Pechiney-Ugine-Kuhlmann of France and Krupp Kloeckner A of West Germany. Midhani also has the latest equipment and quality control facilities to ensure that all Midhani alloys meet international standards in quality and performance.

Some of the unique production facilities are the powder metallurgy shop for compacting, sintering, swaging and wire drawing of molybdenum and tungsten products, sophisticated melting and refining furnaces, precision forging, rolling and wire drawing equipment and a central quality control laboratory.

Midhani's product range includes iron, nickel and cobalt based superalloys, special purpose steels, titanium and titanum alloys, electrical and electronic alloys including electrical resistance alloys and powder metallurgy products.

MIDHANI

Mishra Dhatu Nigam Limited

(A Government of India Enterprise)

Kanchanbagh Hyderabad 500 258

Sista's/Midhani/153.84

संकलनः

दूर संचार के इतिहास की विशिष्टताएं

डा. अरविंद कुमार गुप्ता
एवं
श्रीमती अल्का गुप्ता
दि इंस्टिट्यूट आफ इंजिनियर्स (इन्डिया)
8 गोखले मार्ग, कलकत्ता-700020.

(अंक 23.3 से आगे)

1894 अमेरिका के वैज्ञानिकों ई कीथ, सी जे एरिकसन ने टेलिफोन डायल का आविष्कार किया।

1897 भौतिकविद लार्ड रेले ने सह-अक्षीय (को एक्सियल) केबिल के मौलिक डिजाइन की रुपरेखा तैयार की।

1898 एक 2.45 मि.मी. चालकता ट्रंक केबिल, 9 क्वाइड का 45 किमी लम्बा लन्दन और एडल्सबोरी के बीच बिछाया गया।

1899 -कोलम्बिया विश्वविद्यालय के प्रोफेसर पूपित ने दिखाया कि यदि लाइन में प्रेरण कुंडली को श्रेणीबद्ध रखा जाए तो टेलीफोन परिपथ की क्रिया बढ़ायी जा सकती है

रुस में अलैक्जेनडर एस पोपव ने रेडियो-रिसीवर का एकस्व प्राप्त करने के लिए आवेदन किया।

1900 यूरोप के ब्रिस्टल शहर में स्थानीय इस्तेमाल के लिए 15 अप्रैल को पहली बैटरी स्विचबोर्ड, जिसकी क्षमता 1800 उपभोक्ता लाइन थी, शुरु किया गया।

1901 अलैक्जेनडर एस पोपव को 30 सितम्बर को रेडियो-रिसीवर के लिए एकस्व प्रदान किया गया। (अमेरिका के होमर जे जे रावर्ट्स ने अर्गली (क्रासबार) टेलीफोन पद्धति की कल्पना की।)

1902 डेनिस के वैज्ञानिक एमिल करारुप ने लगातार भारित केबिल पद्धति का सुझाव दिया। डेनमार्क और स्वेडन के बीच वैज्ञानिक करारुप के सुझाव अनुसार पहला समुद्रीय टेलीफोन केबिल बिछाया गया।

बेल्जियम के ब्रुसल्स शहर में पहला केन्द्रीय टेलीफोन एक्सचेंज शुरु किया गया।

1903 बर्लिन में प्रारम्भिक वायरलैस टेलीग्राफी सम्मेलन आयोजित किया गया।

1906 फैसन्ड और अलेक्जैंडरसन ने न्यूपार्क के पास 24 दिसम्बर को वायरलैस द्वारा पहला प्रसारण किया।

जॉन एम्वार्स फ्लेमिंग ने तापायनिक वाल्व का आविष्कार किया।

अमेरिका के ली डे फारेस्ट ने विस्तारण के लिए फ्लेमिंग वाल्व में जाली का इस्तेमाल किया तथा इसके लिए 5 जुलाई 1907 को एकस्व प्राप्त किया।

1907 फ्रांस के एडार्ड बेलिन ने टेलीग्राफी द्वारा संचारण लिखने और फोटोग्राफ के लिए एक उपकरण का आविष्कार किया।

1908 जर्मनी में हिल्डशीम शहर में 10 जुलाई को 1200 उपभोक्ता क्षमता का पहला स्वचलित टेलीफोन एक्सचैंज शुरु किया गया। जर्मनी के वैज्ञानिक अरनस्ट ने पहली बार रेडियो तकनीकी के अनुकूल सिद्धान्त का तार द्वारा संदेश संचारित करने में उपयोग किया।

1908-1911 अमेरिका में जार्ज ओ क्स्वीर ने भी वाहक विधियों पर कार्य किया। ग्रेट ब्रिटेन में लन्दन और पेन्जान्स के बीच पार-अटलांटिक टेलिग्राफ यातायात बढ़ाने के उद्देश्य से टेलिग्राफ केबिल बिछाया गया।

1909 जापान में पहला लम्बी दीरी का टेलिफोन केबिल (6 कि. मी. के 100 युगल में) ओसाक और ामो-योडोगावा एक्सचेंजों के बीच कार्यरत किया गया।

1910 लन्दन में ब्रिटिश टेलीग्राफी कालेज के श्री शर्मन ने वाकी-टॉकी के लिए एकस्व प्राप्त कया जिसको सुवाह्य वायरलैस स्टेशन के रुप में उपयोग में लाया गया।

1912 ग्रेट ब्रिटेन के एपसाम शहर में पहला स्वचालित टेलीफोन एक्सचेंज, (500 उपभोक्ता क्षमता) शुरु किया गया।

1913 लन्दन-बरमिंगम मार्ग पर एक भारित केबिल बिछाया गया, जिसमें 52 युगल तथा 26 छायाभास परिपथ थे। छायाभास परिपथ का अधिकतर भाग बाहर की तरफ था, केबिल को बाद में लीवरपूल तक बढाया गया।

जर्मनी में लम्बी दूरी के लिए टेलीफोन केबिल बर्लिन और मगडेबर्ग के बीच शुरु किया गया।

1914 100 निवासियों पर टेलीफोन ग्राहकों की संख्या निम्नलिखित थी: अमेरिका, 9.7; कनाडा, 6.5; न्यूजीलेन्ड, 4.6; हवाई, 3.5; आस्ट्रेलिया, 2.8; ग्रेट ब्रिटन, 1.7; और जर्मनी, 1.6

बेल्जियम में ब्रुसल्स तथा एन्टवर्प के बीच लम्बी-दूरी के केबिल बिछाए गए।

1915 अमेरिका के टेलीफोन और टेलीग्राफ कम्पनी (AT & T) और इन्टरनेशनल वेस्टर्न इलेक्ट्रिक कम्पनी ने पार-अटलांटिक वायरलैस टेलीफोन परीक्षण किए।

1916 अमेरिकी वैज्ञानिक जान जी राबर्टस तथा जान एन रेनाल्डस ने अर्गला (क्रासबार) पद्धति के लिए एकस्व प्राप्त किया।

1918 ब्रिटिश वैज्ञानिकों डब्ल्यू एच एक्स तथा डब्ल्यू जार्डन ने इलेक्ट्रानिक स्वीचिंग परिपथ का आविष्कार किया।

अमेरिका में बाल्टीमोर और पिटसवर्ग के बीच पहली बार संवाहक परिपथ बिछाए गए। ए टी एंड टी कंपनी ने बिजली के खम्भों के लिए एक बगल पट्टी (side-band)का प्रयोग किया। न्यूयार्क और चिकागो की लम्बी दूरी को एक और तीन 2 वाहिका खुली-तार पद्धति द्वारा जोड़ा गया।

1920 अमेरिका के जी ए कैम्पबेल ने विरोधी गौण ध्वनी (side-tone) टेलीफोन परिपथ का आविष्कार किया।

1921 पहला समुद्रीय सह-अक्षीय टेलीफोन केबिल फ्लोरिडा और हवाना क्यूबा के बीच बिछाया गया।

जर्मनी में हेनओवर - रहीनलैंड केबिल में टेलीफोन परिपथों के लिए एल्यूमिनियम संचालकों का प्रयोग किया गया था।

1922 ब्रिटिश पोस्ट आफिस ने एक डायरेक्टर नाम का उपकरण विकसित किया, जिसमें टेलीफोन कॉल को परिपथों के जटिल बड़े शहरों में टेलीफोन एक्सचेंज के बीच एक नई दिशा दी गई थी।

1923 सर एडवर्ड एपलटन ने आयनमंडल के अस्तित्व का प्रदर्शन किया, जिसकी भविष्यवाणी ओलीवर हेवीसाइड ने की थी।

1925 आस्ट्रेलिया में सिडनी और मेलबर्न के बीच पहली संवाहक पद्धति शुरु की गई।

1926 ग्रेट ब्रिटेन और कनाडा के बीच पहली टेलीफोन सेवा शुरु की गई, जिसमें लघु-तरंग रेडियो का प्रयोग किया गया।

स्वेडन में पहली अर्गला (क्रासबार) पद्धति शुरु की गई।

20 जनवरी को जापान में कयोबासी शहर में पहला स्वचालित टेलीफोन एक्सचेंज शुरु किया गया।

1927 जापान में टोक्यो और नागोया के बीच 400 कि.मी. के रास्ते पर पहली बार स्थायी पुनरावर्तक स्थापित किए गए।

7 जनवरी को ए टी एंड टी कम्पनी तथा ब्रिटिश पोस्ट आफिस ने पहली बार पार-अटलांटिक सेवा रेडियो संचारण द्वारा शुरु की। तीन महीने बाद 8 अप्रैल को आस्ट्रेलिया और ग्रेट ब्रिटेन के बीच एक टेलीफोन सेवा प्रारम्भ की गयी।

बैल टेलीफोन लेबोरेटरी ने पहली बार दूरदर्शन संचारण प्रयोग किया।

1929 ब्रिटिश ब्राडकास्टिंग कार्पोरेशन (BBC) ने पहला नियमित दूरदर्शन कार्यक्रम अपने लन्दन स्टूडियों द्वारा प्रसारित किया।

1930 अमेरिका के एल एसपनीस और एब ए अफेल ने बताया कि सह-अक्षीय केबिलों की मदद से संवाहक केबिलों को काफी हद तक बढ़ाया जा सकता है।

1931 पहली व्यवसायिक सूक्ष्म तरंग संपर्क पद्धति ग्रेट ब्रिटेन में प्रदर्शित की गई और 1934 में लिमप्ने तथा सेंट इंगलैवर्ट के बीच प्रयोगात्मक रुप से शुरु की गयी। जार्ज सी साउथवर्थ ने बैल पद्धति में तरंग पत्र-निर्धारित खोज शुरु की तथा शुरु के प्रयोगों में इसके लिए लिए पानी से भरे पाइपों का उपयोग किया।

1932 मेडरिक के सम्मेलन में एक नयी अंतर्राष्ट्रीय संचार सम्मेलन की रुप-रेखा खींची गई ताकि इसको पुराने अन्तर्राष्ट्रीय टेलीग्राफ तथा अन्तर्राष्ट्रीय रेडियो-टेलीग्राफ सम्मेलन से बदला जा सके। अन्तर्राष्ट्रीय टेलीग्राफ यूनियन का नाम बदलकर इन्टरनेशनल टेलीकम्यूनिकेशन्स यूनियन रखा गया।

ग्रेट ब्रिटन ने बैल्जियम के शहर लापाने तक पहला समुद्रीय केबिल संवाहक के कार्य हेतु बिछाया गया। इसमें 90 परिपथ थे तथा 1+2 संवाहक संयंत्र का इस्तेमाल किया गया था।

1920 में जार्ज ए कैम्पबैल के कार्य को देखते हुए, ब्रिटिश पोस्ट आफिस द्वारा टेलीफोन सेटों में विरोधी गौण ध्वनि कुण्डली का इस्तेमाल किया गया।

1933 पोलिइथाइलीन, जोकि भविष्य में केबिल चालकता उष्मा-रोधी के लिए उपयुक्त थी, ग्रेट ब्रिटेन में इम्पीरियल केमिकल इन्डस्ट्रीज द्वारा खोज की गई।

1934 अमेरिका के एच एस ब्लैक ने ऋणात्मक पुननिर्वेशन के सिद्धान्त द्वारा टेलीफोन पुनरावर्तकों के डिजाइन में आमूल परिवर्तन किया।

पहला भार रहित संवाहक केबिल, जिसकी लम्बाइ 7.5 कि. मी. थी, जापान में ओमोमिची और मिनोगे के बीच बिछाया गया।

अमेरिका के वैज्ञानिक आर्मस्ट्रोंग ने आवृत्ति अनुकूल प्रसारण के लिए कई प्रयोग किये। अमेरिका के सरगे शेलकनाफ ने बैल सिस्टम जरनल में सह-अक्षीय संचारण-लाइनों की विद्युत-चुम्बकीय परिकल्पना के विषय पर एक लेख प्रकाशित किया, जिसमें उन्होंने निर्माण मानकों के बारे में निष्पत्ति दी।

1935 जर्मनी और ग्रेट ब्रिटेन में नियमित दूरदर्शन सेवा शुरु की गई। लन्दन और बरमिंघम के बीच एक उच्च-आवृत्ति संवाहक पद्धति को एक सह-अक्षीय चार-युगल केबिल के ऊपर से भेजा गया।

1936 जनवरी में दुनिया का पहला रेडार ग्रेट ब्रिटेन में बनाया गया। रंगीन दूरदर्शन प्रसारण का ग्रेट ब्रिटेन में परीक्षण किया गया। अप्रैल में न्यूयार्क में पहली बार टेलीफोन पर दोनों तरफ से बातचीत शुरु की गई। पहली काल करीब 30 मिनट तक चली।

अमेरिका में न्यूयार्क और फिलाडेल्फिया के बीच 2 युगल सह-अक्षीय केबिल का इस्तेमाल करके टेलीफोन सेवा के परीक्षण किए गए।

1937 डा. एलेक्स एच रीवज ने स्पंद संकेत अनुकूलन (pulse code modulation) तथा कैथोड-किरण नली, रेडियो-दिशा-ज्ञान योजना तथा दिशा-संकेत का आविष्कार किया।

1938 मास्को के खबारुस्क शहर में दुनिया की सबसे लम्बी टेलीफोन लाइन (लम्बाई 9700 कि.मी.) बिछायी गयी, जिसमें तीन-वाहिका संवाहक थे। यह परियोजना ग्रेट ब्रिटेन के स्टैन्डर्ड टेलीफोन्स तथा केबिल्स द्वारा कार्यान्वित की गई।

जापान में योकोहामा-हियोशी टेलीफोन एक्सचेंजों के बीच 12.5 कि.मी. लम्बा पहला सह-अक्षीय केबिल बिछाया गया।

1943 ब्रिटिश पोस्ट आफिस द्वारा पहला समद्रीय केबिल रिपीटर आइरिश समुद्र में बिछाया गया।

ब्रिटिश पोस्ट आफिस के दल ने जिसके अध्यक्ष थामस हेरल्ड पूलावर्स थे, एक प्रोग्रामचालित इलेक्ट्रानिक कम्प्यूटर, कालोसस, तैयार किया जिसमें 1500 इलेक्ट्रानिक वाल्व थे।

1944 ग्रेट ब्रिटेन और फ्रांस के बीच समुद्रीय केबिल बिछाए गए। ये केबिल 109 नाटिकल मील लम्बे थे तथा पहली बार इनके द्वारा इतनी लम्बी दूरी पर बातचीत की जा सकी। इन केबिल को 1948 में पुनः प्राप्त किया गया और दो 15.75 मि.मी. सह-अक्षीय

केबिल ग्रेट ब्रिटेन और फ्रांस के बीच बिछाए गए।

1945 पहला पोलीइथाइलीन समुद्रीय सह-अक्षीय विद्युत पथ्य (dielectric) जिसकी त्रिज्या 15.75 मि.मी. थी, ब्रिटिश पोस्ट आफिस द्वारा बिछाया गया। केबिल करीब 200 नाटिकल मील लम्बी थी।

वैज्ञानिक आर्थर सी क्लार्क ने सूचना संचारण हेतु पहली बार बनावटी उपग्रह के प्रयोग का सुझाव दिया।

1946 अमेरिका द्वारा एक प्रयोग में चन्द्रमा से रेडियो संकेत परावर्तित किए गए।

1947 अन्तर्राष्ट्रीय संचार सम्मेलन, अटलांटिक शहर, द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय आवृत्ति पंजीकरण बोर्ड बनाया गया तथा इसका मुख्यालय जनेवा में रखा गया।

1948 अमेरिका में बैल प्रयोगशाला के वैज्ञानिकों, बारडीन और ब्रेटेन ने ट्रान्जिस्टर का आविष्कार किया। इसका नाम ट्रान्स्फर-रेसिस्टर (प्रतिरोधक) द्वारा निरुपति किया गया।

अमेरिका के शाकले ने एक उन्नत ट्रांजिस्टर का आविष्कार किया, जिसका नाम जंक्शन ट्रान्जिस्टर रखा गया।

1949 लन्दन और कोल्डफील्ड के बीच लम्बी दूरी के लिए 17 दिसम्बर को पहला 25.50 मि.मी. लम्बा दूरदर्शन केबिल बिछाया गया।

1950 की वेस्ट फ्लोरिडा और हवाना के बीच पहला समुद्रीय टेलीफोन केबिल, लचीले, जलमग्न तथा गहरे-समुद्रीय रिपीटरों के साथ बिछाया गया।

कोलम्बो योजना पर विचार किया गया तथा विकासशील दशों के लिए संचारण प्रशिक्षण शुरु किया गया। इस योजना के अन्तर्गत पाकिस्तान में पहला प्रशिक्षण केन्द्र शुरु हुआ।

1951 ब्रिटिश पोस्ट आफिस ने हल्के भार वाला गहरा-समुद्रीय, सह-अक्षीय टेलीफोन केबिल डिजाइन किया, जोकि बक्तर-बन्द कवच रहित था। इसका बाहरी अर्धव्यास 32.75 मि.मी. था तथा यह 3500 फैदम (fathom) गहराई के लिए पर्याप्त शक्ति रखता था।

1952 लन्दन में इलेक्ट्रानिक स्वीचिंग के प्रयोग के लिए सभी इलेक्ट्रानिक डायरेक्टर्स को यांत्रिक स्वीचिंग एक्सचेंज में रखा गया।

1953 ए टी एन्ड टी कम्पनी, ब्रिटिश पोस्ट आफिस तथा कनाडा की ओवरसीज टेलिकम्यूनिकेशन कार्पोरेशन के बीच पहली बार पार-अटलांटिक टेलीफोन केबिल के लिए सहमति हुई।

1954 स्कोटलैन्ड और नार्वे के बीच समुद्रीय टेलीफोन केबिल बिछाया गया। इस केबिल की लम्बाई 300 नाटिकल मील थी तथा उस समय दुनिया का यह सबसे लम्बा समुद्रीय टेलीफोन केबिल था।

1956 ब्रिटिश पोस्ट आफिस केबिल जहाज द्वारा 25 सितम्बर को पहली पार-अटलांटिक टेलीफोन केबिल (टी ए टी) जिसमें 36 परिपथों के लिए जलमग्न रिपीटर थे, ग्रेट ब्रिटेन से न्यूफाउन्डलैन्ड तक बिछाया गया। इसकी अधिकतम गहराई 4200 मी. थी। ब्रुसल्स और पेरिस के बीच पहला अन्तर्राष्ट्रीय स्वचालित परिपथ शुरु किया गया।

1957 4 अक्तूबर को रुस में पहला कृत्रिम भू-उपग्रह छोड़ा गया।

1958 उपभोक्ता ट्रंक डायलिंग सेवा ब्रिस्टल में शुरु की गयी। जिसमें पहली बार ठंडे कैथोड रजिस्टर अनुवादक उपकरण का प्रयोग किया गया।

1960 इन्टरनेशनल टेलिकम्युनिकेशन यूनियन ने संचारण प्रशिक्षण शुरु किया। सन् 1983 में यूनियन करीब 25 प्रशिक्षण कार्यक्रमों में शामिल था। 1984 में यूनियन के सहयोग से प्रशिक्षण केन्द्रों की संख्या 50 से भी ज्यादा हो गयी।

1961 पहला हल्के भार वाला बक्तर-बन्द कवच रहित समुद्रीय केबिल ग्रेट ब्रिटेन से न्यूफाउन्डलैन्ड तक सफलतापूर्वक बिछाया गया। इस केबिल का डिजाइन 1951 में ब्रिटिश पोस्ट-आफिस द्वारा किया गया।

अमेरिका के वैज्ञानिक मोरिस ने बैल लेबोरेटरी के लिए पहली बार एक इलेक्ट्रानिक टेलीफोन एक्सचेंज डिजाइन किया जिसकी क्षमता 500 उपभोक्ता थी।

1962 लन्दन में इलेक्ट्रानिक टेलीफोन एक्सचेंज शुरु किया।

10 जुलाई को अमेरिका में संचारण उपग्रह, टेल्स्टार-1, छोडा गया। म्युनिख में इलेक्ट्रानिक टेलीफोन एक्सचेंज शुरु किया।

1963 स्टुटगार्ट में टेलीफोन सैट पर डायल करने की जगह अंगुली से बटन दबाने वाला बोर्ड प्रयोग में लाया गया।

वैनक्यूवर (कनाडा) तथा सिडनी (आस्ट्रेलिया) के बीच, जिसकी दूरी 8076 नाटिकल मील थी, दुनिया की सबसे लम्बी समुद्रीय टेलीफोन केबिल पद्धति दिसम्बर में शुरु की गयी। इसमें 80 परिपथ थे तथा ब्रिटिश पोस्ट-आफिस द्वारा बनाए गए हल्के-भार वाले केबिल इस्तेमाल किए गए थे।

1964 में ब्रिटिश पोस्ट-आफिस द्वारा 1948 में ग्रेट ब्रिटेन और बेल्जियम के बीच केबिल बिछाया गया जिसमें ट्रांजिस्टरयुक्त रिपीटर थे। इससे केबिल की क्षमता 216 चैनल से 4200 चैनल बढ़ गई थी। पहली बार ट्रांजिस्टरयुक्त टर्मिनल उपकरण समुद्रीय टेलीफोन संयोजन के लिए प्रयोग किए गए थे।

सेनफ्रांसिस्को और टोकियो के बीच पार-अटलांटिक समुद्रीय केबिल बिछाया गया।

1965 इन्टरनेशनल टेलिकम्यूनिकेशन यूनियन के 100 वर्ष पूरे हुए।

6 अप्रैल को पहला व्यवसायिक जियोस्टेनरी उपग्रह छोड़ा गया।

1966 ब्रिटिश पोस्ट-आफिस द्वारा एक केबिल अपनाया गया, जोकि उसके उपभोक्ता केबिल नेटवर्क वितरण के लिए उपयोग में लाया गया।

ब्रिटिश वैज्ञानिकों, जार्ज हाकम तथा चार्ल्स काओ, फाइबर केबिल का सुझाव दिया।

पहला व्यवसायिक इलेक्ट्रानिक टेलीफोन एक्सचेंज ग्रेट ब्रिटेन में शुरु किया गया।

1967 अक्तूबर में ब्रिटिश पोस्ट-आफिस के जहाज ''मोनार्च''ने नार्वे और डेन्मार्क के बीच पहली 480 परिपथ समुद्रीय टेलिफोन पद्धति शुरू की गई।

ब्रिटिश पोस्ट-आफिस केबिल नेटवर्क पर स्पंद संकेत अनुकूलन संचारित पद्धति शुरू की गई। अमेरिका में बैल टेलीफोन सिस्टम ने ''सी प्लो'' नामक पद्धति विकसित की जोकि समुद्रीय केबिल के तटीय किनारों के समुद्र तल से 60 से.मी. नीचे नष्ट कर देती है। इस प्रकार केबिल का समुद्री मछलियों द्वारा नष्ट होने का खतरा समाप्त हो जाता है।

दक्षिण-पूर्वी एशिया कामनवेल्थ का आखिरी भाग का केबिल आस्ट्रेलिया, हांगकांग और सिंगापूर के बीच शुरु किया गया।

1968 दुनिया का पहला सार्वजनिक अंकीय टेलीफोन एक्सचेंज एम्प्रेस-लन्दन में शुरु हुआ।

1970 पहली बार लन्दन में टेलीफोन उपभोक्ता न्यूयार्क के टेलीफोन उपभोक्ताओं से बातचीत कर पाए। यह दुनिया की पहली अंतर्राष्ट्रीय उपभोक्ता डायलिंग सेवा थी।

1971 जापान के कासुयगासेकी शहर में पहला इलेक्ट्रानिक टेलीफोन एक्सचेंज दिसम्बर में शुरु किया गया।

1973 लन्दन और सिडनी के बीच एक प्रयोगात्मक अन्तर्राष्ट्रीय सह-दृष्टि संपर्क स्थापित किया गया।

1974 ब्रिटेन और स्वीडन के बीच दुनिया की पहली व्यवसायिक अन्तर्राष्ट्रीय सह-दृष्टि सेवा शुरु की गई।

गिल्डफोर्ड और पोर्टमाउथ के बीच एक 120 मैगा बिट प्रति सेकण्ड अंकीय संचारित पद्धति सह-अक्षीय केबिल के ऊपर स्थापित की गई।

1975 दो नए ब्रिटिश केबिल जहाज, मोनार्च और आइरिस, छोडे गए।

1976 हर्टफोर्डशायर में हिचिन और स्टेवेनेज के बीच एक प्रकाशीय फाइबर केबिल टेलीफोन मार्ग पर बिछाया गया। इस पद्धति में एक साथ 1920 बार टेलीफोन पर सम्पर्क स्थापित किया जा सकता था। फ्रांस में 19 फाइबर का एक प्रयोगात्मक प्रकाशीय फाइबर केबिल स्थापित किया गया।

अमेरिका में अटलांटा में 144 फाइबर केबिल स्थापित किया गया।

1979 दुनिया की पहली सार्वजनिक विडियोटेबल्स सेवा ''ब्रिस्टल'' लन्दन में शुरू की गई। इसका आविष्कार ब्रिटिश पोस्ट-आफिस द्वारा किया गया था। इसमें सूचनाओं को कम्प्यूटर में सुरक्षित रखा गया तथा बाद में ये सूचनाएं साधारण टेलीफोन लाइन के द्वारा संचारित की गई तथा दूरदर्शन द्वारा प्रदर्शित की गई।

1980 दुनिया का पहला प्रकाशीय रेशा (फाइबर) समुद्रीय केबिल स्काटलैन्ड में समुद्र के पानी में बिछाया गया।

1981 दिसम्बर में टोकियो में ओहटेमेची टेलीफोन एक्सचेंज और आयमा टेलीफोन एक्सचेंज के बीच पहला प्रकाशीय रेशा केबिल बिछाया गया।

1982 जापान में पहला अंकीय टेलीफोन एक्सचेंज ओहटेमेची में दिसम्बर में शुरू किया गया।

1983 पार-अटलांटिक केबिल - टी ए टी-7 (लम्बाई 3277 नाटिकल मील) शुरु किया गया। इसमें एक साथ टेलीफोन पर 4200 सम्पर्क किए जा सकते थे।

ब्रिटिश टेलीकम्यूनिकेशन्स ने दुनिया की पहली कार्यशील एक नए प्रकार की प्रकाशीय रेशा (फाइबर) केबिल पद्धति शुरू की। यह पद्धति पहले 27 किमी दूरी के बीच शुरू की गई।

1984 पेरिस में एक प्रकाशीय रेशा समुद्रीय केबिल पद्धति के निर्माण के लिए 15 जून को एक समझौते पर हस्ताक्षर किए गए। इसकी लागत 335 करोड़ अमरीकी डालर थी, तथा यह भी निश्चय किया गया था कि 1988 तक पूरे अटलांटिल में इस केबिल का निर्माण किया जाएगा।

जर्मनी में 160 मिमी लम्बा प्रकाशीय रेशा केबिल, जिसमें 60 रेशे थे, 19 नवम्बर को हमबर्ग और हेनओवर के बीच शुरू किया गया।

1985 जर्मनी में एक तरह के प्रकाशीय रेशा लम्बी दूरी के केबिल बिछाने की योजना स्टुटगार्ट और कार्ल्सरूह के बीच बनाई गयी।

[1985 **से अब तक हुए विकास संबंधित जानकारी आमंत्रित हैं- सं.**]

विज्ञान समाचार

बी. ए. आर. सी. में 'समान्तरित प्रक्रम संगणक प्रणाली का विकास

भाभा प. अ. केन्द्र के कंप्यूटर प्रभाग ने एक ऐसी अत्यन्त तेज समान्तरित प्रक्रम कंप्यूटर प्रणाली विकसित की है जिसमें प्रयुक्त अधिकांश हार्ड वेयर भारत में ही उपलब्ध हैं। इसमें एक मुख्य प्रोसेसर के अतिरिक्त चार नोड समान्तरित प्रक्रम निकाय का समावेश है जो नवीनतम रिस्क (रिड्यूस्ड इंस्ट्रक्शन सेट कंप्यूटर) माइक्रोप्रोसेसर पर आधारित हैं। जैसा कि मालूम है कि प्रचलित सुपर कंप्यूटर में अत्योच्च गति पर संगणना का काम क्रमिक रुप से संपन्न होता है जबकि इसके विपरीत बी. ए. आर. सी. में विकसित प्रणाली में एक ही तरह के कई कम शक्ति के प्रोसेसरों को आपस में समान्तरित रुप में जोड़ा गया है। इस प्रकार मुख्य बड़े काम को कई छोटे-छोटे भागों में बांट कर इन छोटे-छोटे प्रोसेसरो की सहायता से एक साथ संपन्न किया जा सकता है, जिससे सगय में बहुत बचत होती है।

इस संगणक की शीर्षस्थ गति 4000 लाख फ्लोटिंग प्वाइंट इंस्ट्रक्शन प्रति सेकेन्ड (मफ्लोस) है तथा वह काम जो वैक्स (VAX) 11/780 किस्म के संगणक में 3 घन्टे में होता था, अब 3 मिनिट में इस विकसित प्रणाली द्वारा किया जा सकता है। इस मशीन के हार्डवेयर की लागत लगभग 30 लाख रुपये आती है। यह मशीन इस केंन्द्र के वैज्ञानिको को अपने शोध कार्य को शीघ्रता से पूर्ण करने में अत्यन्त लाभकारी एवं विधाजनक सिद्ध होगी ऐसी आशा की जा सकती है-

(गो. प्र. को.)

अन्य विज्ञान-समाचार

जीवन के तनाव

आज के आपाधापी के युग में दैनिक जीवन के तरह तरह के तनाव स्वास्थ्य पर प्रभाव डालते हैं। घर के अंदर से लेकर आफिस के काम तक रोज सैकड़ों बातों का दबाव मन और शरीर पर निरंतर पड़ता रहता है। एक नये अध्ययन के अनुसार तनाव से शरीर की प्रतिकारक कोशिकाओं की कार्यक्षमता पर बुरा असर पड़ता है जिससे ऐसे लोग अपेक्षाकृत अक्सर बीमार हो जाते हैं। शरीर की प्रथम रक्षा-पंक्ति के प्रहरी ये प्रतिकारक (या मारक) कोशिका ही रोगाणुओं और ट्यूमर से रक्षा करती है।

इन अध्ययनों से पता चलता है कि:-

(1) रोज के तनावों से अधिक प्रभावित व्यक्तियों में प्रतिकारक कोशिकाओं की गतिविधि सबसे कम मिलती है और ऐसे तरह तरह की बीमारियों से अक्सर प्रभावित होते रहते हैं।

(2) प्रतिकारक कोशिकाओं की क्षीण गतिविधि वाले लोग अधिक क्रोधी और भ्रमित रहते है।

(3) तनाव, प्रतिरोध क्षमता और बीमारी के बीच महत्वपूर्ण संबंध पाया गया है। 30 वर्ष से कम आयु के वर्ग में यह संबंध सबसे घनिष्ट होता है।

प्रश्न यह उठता है कि 30 वर्ष से कम आयु के लोग क्यों तनाव से ज्यादा प्रभावित होते है? संभवतः समुचित परिप्रेक्ष्य के अभाव में वे घटनाक्रम को अतितीव्र रूप में अनुभव करते हैं। कई अनुसंधान भी इसी बात की ओर इशारा करते हैं। अनुसंधानकर्ता ऐसा समझते हैं कि ये लोग तनाव से निपटने के अपने अपने तरीके विकसित नही कर सके हैं इसलिए दैनिक घटनाक्रम उन्हें अधिक आशंकित करते हैं। स्थितियों को, घटनाओं को शुभ ही समझने का प्रयास करना संभवतः इस स्थिति का काट बन सके।

शारीरिक व्याधियों का पूर्वाभास

कैंसर से संघर्ष की प्रक्रिया में जल्दी से जल्दी उसकी पहचान कर पाना एक अहम मसला है। कैंसर और अन्य कई रोगों को पहचानने के लिए अनुसंधानकर्ता अब 'जीन' में होने वाले आण्विक परिवर्तनों की खोज कर रहे हैं। किसी व्यक्ति के गुणसूत्र (क्रोमोसोम) और जीन में होने वाले परिवर्तन किस तरह रोगों से जुड़े हैं, इसे समझने के प्रयास हो रहे हैं। शरीर की प्रत्येक कोशिका में 23 की जोड़ी में व्यवस्थित क्रोमोसोम में तकरीबन 100000 जीन होते हैं। इन्ही में शरीर के सभी गुण-दोष और प्रक्रियाओं के निर्देश छिपे होते हैं। एक अनुसंधानकर्ता के अनुसार 'क्रोमोसोम' के विस्तृत अध्ययन से संभवतः भविष्य में ये बताया जा सकेगा कि रक्त कैंसर से पीड़ित व्यक्ति कितने दिन जी सकेगा या उपचार का उस पर क्या प्रभाव होगा।

इस अध्ययन में क्रोमोसोम में ऐसे भागों को परखा जाता है जहां से उनके टूटने और पुनर्संयोजन की संभावना हो, जिन्हें कैंसर से संबंधित पाया जाये। प्रारंभिक प्रमाणों से आभास मिलता है कि कुछ घोलक और पेट्रोलियम उत्पादों का सतत संपर्क रक्त कैंसर की संभावना बढ़ा सकता है। अनुसंधानकर्ताओं ने यह पाया है कि कुछ 'जीन' जो सामान्य कोशिका के लिए अति आवश्यक है, कैंसर जीन बन सकते है। उनकी धारणा है कि एक जीन जिसे पी- 53 कहा जाता है, आंशिक रूप से फेफड़ों, रक्त, आंत, चमड़ी, स्तन, गले और लिवर जैसे भागों में कैंसर पैदा कर सकता है।

कल्पना की जा सकती है कि भविष्य में ऐसे जांच हो सकें जिससे रक्त परख करके कई वर्षो बाद होने वाले विकार या कैंसर की संभावना जानी जा सके। और तब डाक्टर जीवन-पद्धति में आवश्यक फेरबदल और समुचित जीन उपचार सुझा सके। बहरहाल इस कल्पना को यथार्थ बनने में बड़ा लंबा सफर तय करना होगा।

प्रस्तुतिः डा. दुर्गाप्रसाद पांडये

संगोष्ठी समाचार

'नाभिकीय ऊर्जा एवं पदार्थ'

24 जनवरी को पटना में नाभिकीय ऊर्जा एवं पदार्थ विषय पर हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद, भाभा परमाणु अनुसंधान केंन्द्र, बंबई द्वारा आयोजित एक द्विदिवसीय संगोष्ठी का उद्घाटन डा. आर. चिदम्बरम्, निदेशक, भा. प. अ. के.ने किया। अपने उदघाटन भाषण में उन्होंने नाभिकीय पदार्थों के उत्खनन और प्राकृतिक दोहन में बिहार की अग्रणी भूमिका की प्रशंसा करते हुए बताया की भारत सरकारने नाभिकीय विद्युत संयंत्रों की प्रचालन एवं विद्युत ऊर्जा उत्पादन के लिए एक दीर्घ कालीन योजना तैयार की है। इस समारोह की अध्यक्षता विज्ञान एवं औद्योगिकी मंत्री श्री शिवनन्दन झा ने की तथा मुख्य अतिथि पटना उच्चन्यायालय के मुख्य न्यायाधीश श्री बी. सी. बसाक थे। श्री झा ने अपने अध्यक्षीय भाषण में आशा प्रकट की कि विज्ञान के क्षेत्र में किये जा रहे कार्य देश की प्रगति में दूरगामी प्रभाव डालेंगे। श्री बसाक ने परमाणु ऊर्जा के प्रसार तथा प्रगति हेतु विशेष एवं संगठित प्रयासों की ओर संकेत किया। इन कार्यो में जन मानस को विश्वास में लेना आवश्यक होगा। संगोष्ठी संयोजक डा. एस. ए. अहमद ने भी नाभिकीय ऊर्जा के कार्य को आगे बढ़ाने के कार्य की आवश्यकता को स्पष्ट किया। इस वैज्ञानिक संगोष्ठी में बिहार सहित उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश, तमिलनाडु, मध्यप्रदेश और
राजस्थान से आये करीब 200 वैज्ञानिक, विचारक एवं विश्वविद्यालय के प्राध्यापक शामिल हुये। इस संगोष्ठी के आयोजन में बिहार विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद,
पटना, यूरेनियम कार्पोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड, जादुगोडा, पटना विश्वविद्यालय एवं न्यूक्लियर पावर कार्पोरेशन, बंबई ने सक्रिय योगदान दिया।

इस द्विदिवसीय संगोष्ठी में भारतीय नाभिकीय ऊर्जा कार्यक्रम, रिएक्टरों के अभिकल्पन व प्रचालन, रिएक्टरों का उपयोग चिकित्सा, उद्योग, कृषि एवं जीव विज्ञान में रेडियो समस्थानिकों की उपादेयता, भारी

पानी का उत्पादन एवं प्रयोग, यूरेनियम अन्वेषण और पर्यावरण आदि विषय पर हिंदी में वार्तायें हुयी तथा उनपर समुचित एवं सक्रिय चर्चा का भी आयोजन किया गया जिसमें अन्य विषयों के अतिरिक्त बिहार में परमाणु रिएक्टर संबंधित कार्य किये जाने पर सहमति प्रकट की गयी। □

डा. एस. ए. अहमद
(संयोजक)

नोबेल पुरस्कार: किसे और क्यों?

नोबेल पुरस्कार: किसे और क्यों? कार्यक्रम के अंतर्गत हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद के तत्वावधान में 20 जनवरी 1992 को भाभा प. अ. के. में एक अर्धदिवसीय सेमिनार का आयोजन किया गया। इसमें टी. आई. एफ. आर. के वरिष्ठ प्रोफेसर गिरजेश गोविल ने वर्ष 1991 में रसायनिकी में पुरस्कृत स्विस वैज्ञानिक प्रो. रिचर्ड आर. अर्नस्ट द्वारा एन. एम. आर. तकनीक में किये गये उन अभिनव परिवर्तनों का जिक्र किया जिनके द्वारा कार्बन के प्राकृतिक सैंपल में विद्यमान C-13 जैसे अति क्षीण सिग्नल का संसूचन घंटों की अपेक्षा मिनिटों में तथा अत्यन्त मिश्रित एन एम आर स्पेक्ट्रम का द्विविमीय एन एम आर द्वारा विमेदन संभव हो पाया है। इन परिवर्तनों के फलस्वरुप आज जो चुंबकीय अनुनाद बिंबन तकनीक सामने आयी है वह मानव शरीर के भीतरी अंगों के चित्रण में सक्षम है। फीजियोलॉजी एवं मेडिसिन के क्षेत्र में इसी वर्ष (1991) पुरस्कृत जर्मन वैज्ञानिकों डा. इर्विन नेहेर तथा डॉ. बर्ट सकमैन द्वारा विकसित 'पैच एवं क्लैप' विधि पर भा. प. अ. के. के डॉ. के. पी. मिश्रा ने प्रकाश डाला। इस तकनीक द्वारा मानव शरीर में कोशिका से कोशिका के मध्य होने वाले संचार के बारे में महत्वपूर्ण अध्ययन किया गया।

इस समारोह की अध्यक्षता भौतिकी और इलेक्ट्रानिकी एवं यंत्रीकरण वर्ग के निदेशक डॉ. श्याम सुंदर कपूर ने की। परिषद के उपाध्यक्ष डॉ. दीनदयाल सूद ने नोबेल पुरस्कार के बारे में कुछ रोचक जानकारियां देते हुए वक्ताओं तथा श्रोताओं का स्वागत किया। कार्यक्रम के संयोजक डा. गोविंद प्रसाद कोठियाल ने वक्ताओं का परिचय कराया तथा परिषद के सचिव श्री ज्ञानोत्तमलाल गोस्वामी ने धन्यवाद का प्रस्ताव रखा। ■

डा. गोविंद प्रसाद कोठियाल
(संयोजक)

भूकंप विज्ञान में प्रगति - एक अवलोकन

भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, बंबई में दिनांक 17 फरवरी 1992 को 'भूकंप विज्ञान में प्रगति- एक अवलोकन' विषय पर एक दिवसीय संगोष्ठी का आयोजन हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद एवं केन्द्र के भूकंप विज्ञान अनुभाग ने मिलकर किया। इस अनुसंधान केंद्र के भौतिकी और इलेक्ट्रानिकी एवं यंत्रीकरण वर्ग के निदेशक डा. श्याम सुंदर कपूर की अध्यक्षता में डा. हर्ष गुप्ता, सलाहकार, भू-विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग, नई दिल्ली, ने संगोष्ठी का उद्घाटन किया। उन्होंने स्पष्ट किया कि वैज्ञानिक उपलब्धियों का जन मानस तक पहुंचाना वैज्ञानिकों का कर्तव्य है और इसमें हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद एक सक्रिय भूमिका निभा रही है। उत्तरकाशी भूकंप के बाद इस संगोष्ठी का विषय सामयिक है और इसका हिन्दी में आयोजन सराहनीय। समारोह अध्यक्ष डॉ. कपूर ने भूकंप भविष्यवाणी हेतु राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय सहयोग पर बल दिया। परिषद के उपाध्यक्ष डॉ. दीन दयाल सूद ने अतिथियों एवं श्रोताओं का स्वागत किया और संगोष्ठी अध्यक्ष डॉ. सनत कुमार अरोड़ा ने इस आयोजन की पृष्ठ भूमि से अवगत कराया। अंत में डॉ. विजय कुमार (संगोष्ठी संयोजक) ने आभार प्रदर्शन का कार्य किया। इस संगोष्ठी में राष्ट्रीय भू भौतिक अनुसंधान संस्थान, हैदराबाद, रुड़की विश्वविद्यालय, रुड़की, भारत मौसम विज्ञान विभाग, नई दिल्ली, केंद्रीय जल और विद्युत अनुसंधान

शाला, पुणे, राष्ट्रीय शैल यांत्रिकी संस्थान, कोलार, न्यूक्लियर पावर कार्पोरेशन, परमाणु खनिज विभाग, न्यूक्लियर पावर स्टेशन तथा भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र के सब मिलाकर लगभग 250 प्रतिनिधियों ने सक्रिय रूप से भाग लिया।

संगोष्ठी में भूकंप विज्ञान से संबंधित 14 वार्ताए हिंदी में प्रस्तुत की गयीं। इन वार्ताओं में भूकंप विज्ञान का परिचय, भूकंपीय इतिहास और भूकंप मापन यंत्रों के विकास से लेकर बांध, पुल, भवन, नाभिकीय सयंत्रों के अभिकल्पन के समय सुरक्षा की दृष्टि से प्रमुख भूकंपीय पहलुओं तक चर्चा की गयी। इसके अलावा परमाणु संयंत्रों व अन्य बड़े संस्थानो के स्थापन, स्थान चयन करने से पहले की जाने वाली भूकंपीय जोखिम गणना, खान सुरक्षा में भूकंपीय विज्ञान की उपयोगिता, भूकंपीय स्रोतो के अभिज्ञान, जलाशय प्रेरित भूकंपीय प्रक्रिया और भूकंप पूर्व कथन जैसे विषयों पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया। इस केन्द्र में भूकंप विज्ञान के क्षेत्र में चल रहे अनुसंधान के बारे में भी जानकारी दी गयी। अभी हाल ही में 20 अक्तूबर 1991 को उत्तरकाशी में आया विनाशकारी भूकंप संगोष्ठी में भरपूर चर्चा का विषय रहा।

संक्षेप में यह एक दिवसीय संगोष्ठी भूकंप विज्ञान संबंधी जानकारी देने एवं भूकंपो से संबंधित विभिन्न भ्रांतियों के निराकरण में सफल रही। संगोष्ठी में प्रस्तुत वार्ताओं का संकलन भी शीघ्र प्रकाशित किया जाएगा।

■

डा. विजय कुमार जैन
(संयोजक)

आधुनिक जीवन-विज्ञान एवं जैव तकनीकी

2 मार्च 1992 को भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र में हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषदने ''आधुनिक जीव-विज्ञान एवं जैव-तकनीकी'' विषय पर एक दिवसीय वैज्ञानिक संगोष्ठी का आयोजन किया। रिएक्टर वर्ग के निदेशक श्री एस. के. महेता की अध्यक्षता में संगोष्ठी का उद्घाटन ''जैव-आयुर्विज्ञान वर्ग'' के निदेशक डा. चित्तरंजन भाटिया ने किया। अपने उद्घाटन भाषण में उन्हेंने ''कृषि-उत्पादकता और आधुनिक जैव-तकनीकी'' पर प्रकाश डाला। गायों की नस्ल सुधारने में किये जा रहे जैव-तकनीकी कार्यो तथा ट्रांसजीनिक प्राणियों और पौधों के बारे में बताते हुए उन्होने जैव-तकनीकी की असीमत संभावनाओं की ओर संकेत किया। अपने अध्यक्षीय भाषण में श्री मेहता ने रिएक्टर और जैव-तकनीकियों के संबंधो पर प्रकाश डाला।

संगोष्ठी अध्यक्ष डा. एस. के. महाजन ने संगोष्ठी की पृष्ठभूमि प्रस्तुत की तथा विभिन्न भौतिक और जैविक विधाओं के एकीकरण की चर्चा करते हुए बताया कि डी. एन. ए. एक अनोखी संरचना है जो पिछले तीन अरब वर्षो से सूचनायें संजोये चली आ रही है। संगोष्ठी में वक्ताओं ने विभिन्न क्षेत्रों में किये जा रहे अनुसंधानों और उनकी उपलब्धियों का विवरण प्रस्तुत किया। जैव-तकनीकी का रोगनिदान और उपचार में योगदान, स्वयंप्रतिरक्षी व्याधिओं की क्रियाविधि और उनके उपचार के नये आयाम, कृषि-उत्पादकता में सूक्ष्मजीवियों का योगदान, फसलों में कीटनियंत्रण की जैविक विधियाँ, जीवनतंतु या डी. एन. ए. की संरचना और कार्य विधि आदि विविध विषयों पर वैज्ञानिक जानकारी दो सत्रों में प्रस्तुत की गयी। इन सत्रों का संचालन डा. पी. एस. चौहान, डा. एन. गुप्ता, डा. पी. एन. तिवारी एवं डा. डी. पी. पांडेय द्वारा किया गया। डा. सूर्यदेव मिश्र (संगोष्ठी संयोजक) ने सभी संबंधित लोगों के प्रति आभार प्रदर्शन का कार्य किया।

■

डा. सूर्यदेव मिश्र
(संयोजक)

कुछ फूल कुछ कांटे

प्रिय संपादकजी,

हम अपने देश में और विशेष तौर पर अपनी विभिन्न भाषाओं में विज्ञान लोकप्रियकरण का वास्तविक तौर विस्तृत इतिहास संकलित करने का प्रयास कर रहें हैं, जिसके लिए हम आपके इस स्तम्भ में स्थान तथा पाठकों की मदद पाना चाहते हैं।

काफी समय से यह समझा जाता है कि इस में सबसे पहले केवल बंगाल और बंगाल में ही प्रयास किये घटे हैं, और यह तिथि उन्नसवीं सदी के अंतिम चौथाई भाग तक जाती है। किंतु अब हमें ऐसे प्रमाण मिले हैं, जो यह दर्शाते हैं कि ऐसे ही प्रयास और गतिविधियां पंजाब और पंजाबी में भी इसी दौरान की गयी। 1885 में इस प्रयोजन से प्रो. रुचिराम साहनी द्वारा लाहौर में पंजाब सांइस इंस्टीट्यूट (पीएसआई) की स्थापना (प्रो. जी. सी. ओमन के साथ) की गयी थी। वे लगभग सारे पंजाब प्रांत में जाते थे और पंजाबी (और अंग्रेजी में भी आवश्यकतानुसार) विज्ञान पर लोकप्रिय व्याख्यान देते थे। 1888 में उन्होंने विज्ञान के सरल उपकरणों और यंत्रों की मरम्मत तथा निर्माण के लिए पीएसआई कार्यशाला की स्थापना की; इस कार्यशाला में बने उपकरण 1890 के दशक में पूरे भारतवर्ष में बिकते थे। उनकी आत्मकथा में कुछ लोगों का जिक्र आया है, जो अन्य प्रांतों के थे, और जिन्होंने उनके प्रयासों को सराहा और प्रोत्साहित किया, वे हैं; (1) श्री हीरालाल, विज्ञान शिक्षक, होशंगाबाद (अब म. प्र. में), (2) पूना के प्रसिद्ध श्री गोविंद रानडे, (3) बड़ौदा के प्रो. मोदक, और (4) पूना के श्री नाम जोशी, जो भारत के औद्योगिक आधुनिकीकरण के प्रति समर्पित प्रख्यात जन कार्यकर्ता थे। बंगाल के प्रो. जगदीश चन्द्र बोस तथा डा. प्रफुल्ल चन्द्र रे के साथ भी प्रो. साहनी के घनिष्ठ संबंध थे और 1905-1906 से उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के वार्षिक सत्रों के दौरान होने वाली औद्योगिक और वैज्ञानिक प्रदर्शनियों में अपने वैज्ञानिक उपकरणों को प्रदर्शित करना आरंभ किया था। कौन जाने, ऐसे उदाहरण अन्य भारतीय भाषाओं में भी हो। हम इस विषय में निम्नलिखित व्यक्तियों/विषयों पर जानकारी खोज निकालने और प्राप्त करने हेतु मदद चाहते हैं: (1) ऊपर लिखे व्यक्ति जिनके नाम प्रो. रुचिराम साहनी की आत्मकथा में आये हैं, विशेषतया पंजाब में विज्ञान लोकप्रियकरण गतिविधियों और पीएसआई कार्यशाला में निर्मित वैज्ञानिक उपकरणों/यंत्रों के संदर्भ में, (2) अन्य भारतीय भाषाओं में विज्ञान लोकप्रियकरण हेतु 75-100 वर्ष पहले किये गये प्रयास।

यदि इस संबंध में कोई संकेत, सूत्र और सूचना आप के पाठक हमें निम्नलिखित पते पर भेज सकें तो हम आपके आभारी होंगे: **निदेशक, राष्ट्रीय विज्ञान और प्रौद्योगिकी संचार परिषद, विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग, टेक्नॉलोजी भवन, नया महरौली मार्ग, नई दिल्ली**-110016 (फोनः 6866675)

-नरेन्द्र सहगल

अखिल भारतीय हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1991) का परिणाम

पुरस्कार	पुरस्कार विजेता का नाम तथा पता	लेख का शीर्षक	पुरस्कार राशि (रुपए)
प्रथम	**सुभाष चन्द्र लखेड़ा** रक्षा शरीर क्रिया एवं संबद्ध वैज्ञानिक संस्थान, देहली छावनी 110010	आखिर पारकिन्सन रोग क्यों होता है?	1500/-
द्वितीय	**वासुदेव पालीवाल** मोकाती पाड़ा जैसलमेर, (राज.)	ऊर्जा संकट का सहारा: सौर-ऊर्जा आदिकाल से अब तक	1000/-
तृतीय	**अशोक कुमार सूरी** धातुकी प्रमाग, भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, बम्बई-4000085	विरल एवं उच्चपातसह धातु एक अवलोकन	500/-
प्रोत्साहन	**डा. अनिल चटर्जी** वैज्ञानिक राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान दोना पाल, गोवा.	आश्चर्यजनक भारतीय राज केकड़ा और उसका अनोखा व्यवहार	300/-
प्रोत्साहन	**योगेन्द्र कुमार शर्मा** वैज्ञानिक, भारतीय परितेलन संस्थान, देहरादून	खनिज तेल मूल्यांकन एवं महत्त्व	300/-
प्रोत्साहन	**त्रिभुवन नाथ उपाध्याय** वैज्ञानिक अधिकारी रक्षा शरीर क्रिया एवं संबद्ध विज्ञान संस्थान, दिल्ली छावनी-110010	हृदय रोग से बचाव में हमारे आहार और व्यवहार का योगदान	300/
प्रोत्साहन	**डा. सुबोधकुमार दत्त एवं राकेश कुमार पांडे** उत्परिवर्तन प्रजनन प्रयोगशाला, राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ (उ. प्र.)	नीले गुलाब के विकास का वैज्ञानिक पृष्ठाधार	300/-
प्रोत्साहन	**डा. अजय कुमार चतुर्वेदी** रसायन विभाग, आर्य समाज कालेज, अलीगढ़ (उ. प्र.)	प्लास्टिक	300/-
प्रोत्साहन	**डा. विजयकुमार उपाध्याय** प्राध्यापक, भूगर्भ इंजीनियरिंग कालेज, भागलपुर 813210	रेडियोधर्मी खनिज और भू वैज्ञानिक काल निर्धारण	300/-
प्रोत्साहन (अहिंदी)	**अशोक ल. खांडवे** कम्प्यूटर प्रभाग भा. प. अ. के., बम्बई- 400085	संगणको की भाषाएं एवं कार्य प्रणालियां: अत्याधुनिक कार्यप्रणाली 'यूनिक्स'	300/-

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद

रजत जयंती संगोष्ठी

भारत में विज्ञानः सफलता के पथ पर

18-20 जनवरी, 1993.

भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, बम्बई- 400 085.

विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र का एक विशिष्ट स्थान है। अपनी वैज्ञानिक उपलब्धियों के अतिरिक्त इस केंद्र ने हिंदी में वैज्ञानिक साहित्य के सृजन में भी विशेष योगदान दिया है। इस दिशा में व्यवस्थित रूप से कार्य करने हेतु केंद्र में 1968 में **हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद** की स्थापना की गई। परिषद इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए त्रैमासिक पत्रिका **"वैज्ञानिक"** का नियमित प्रकाशन, **अखिल भारतीय विज्ञान लेख प्रतियोगिता** का वार्षिक आयोजन, **वैज्ञानिक शब्दावलियों** का निर्माण, वार्ताओं एव विभिन्न वैज्ञानिक विषयों पर **संगोष्ठियों** का आयोजन निरंतर करती रही है। 1993 में 25 वर्ष पूरे होने पर, परिषद रजत जयन्ती समारोह मनाने जा रही है।

इस उपलक्ष्य में 18-20 **जनवरी,** 1993 को भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, बम्बई में एक संगोष्ठी का आयोजन किया जा रहा है। संगोष्ठी का विषय है- **भारत में विज्ञानः सफलता के पथ पर**। स्वतंत्रता के पश्चात् स्थापित विज्ञान की सुदृढ़ नींव के फलस्वरुप आज भारत विकास के हर क्षेत्र में एक अग्रणीय राष्ट्र के रूप में उभर रहा है। इस संदर्भ में संगोष्ठी के मंच पर नाभिकीय ऊर्जा, अंतरिक्ष विज्ञान, जीव विज्ञान, कृषि, समुद्र विज्ञान, पर्यावरण, सूचना तकनीकी एवं पदार्थ विज्ञान प्रौद्योगिकी जैसे विशिष्ट क्षेत्रों में वैज्ञानिक सफलताओं पर प्रकाश डाला जाएगा। विभिन्न आधुनिक विषयों पर विचारों के आदान-प्रदान के साथ साथ वैज्ञानिक साहित्य की रचना इस संगोष्ठी का एक मुख्य उद्देश्य है। इस संगोष्ठी के माध्यम से भारत में विज्ञान की उपलब्धियों एवं उज्जवल भविष्य की एक झलक राष्ट्र के समक्ष प्रस्तुत करने का यह प्रथम प्रयास होगा।

संगोष्ठी में भाग लेने के लिए पंजीकरण शुल्कः

हि. वि. सा. प. के. आजीवन सदस्यः	रु. 50.00
अन्यः	रु. 100.00

प्रतिनिधियों को मार्ग एवं आवास का खर्च स्वयं वहन करना होगा। संगोष्ठी में भाग लेने के इच्छुक महानुभाव अपना पंजीकरण शुल्क हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद के नाम ड्राफ्ट/स्थानीय चैक द्वारा 30 नवंबर, 1992 तक संगोष्ठी आयोजक को भेजने की कृपा करें।

श्री रामनिवास आर्य
डा. शिव प्रकाश गर्ग
(आयोजक)
भौतिक धातुकी प्रभाग,
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र,
बम्बई-400085.

हिंदी-विज्ञान साहित्य परिषद के लिए **डा. गोविंद प्रसाद कोठियाल** द्वारा संपादित तथा
डा. शिव प्रकाश गर्ग द्वारा मानस प्रिन्टेटस और एजंसीस, घाटकोपर, बम्बई में मुद्रित व प्रकाशित

वैज्ञानिक (त्रैमासिक) R. No. 18862/70
दिल्ली, नई दिल्ली, महाराष्ट्र, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान व उ. प्र. के शिक्षा/विभागों द्वारा स्कूल व कॉलेजों के लिए स्वीकृत

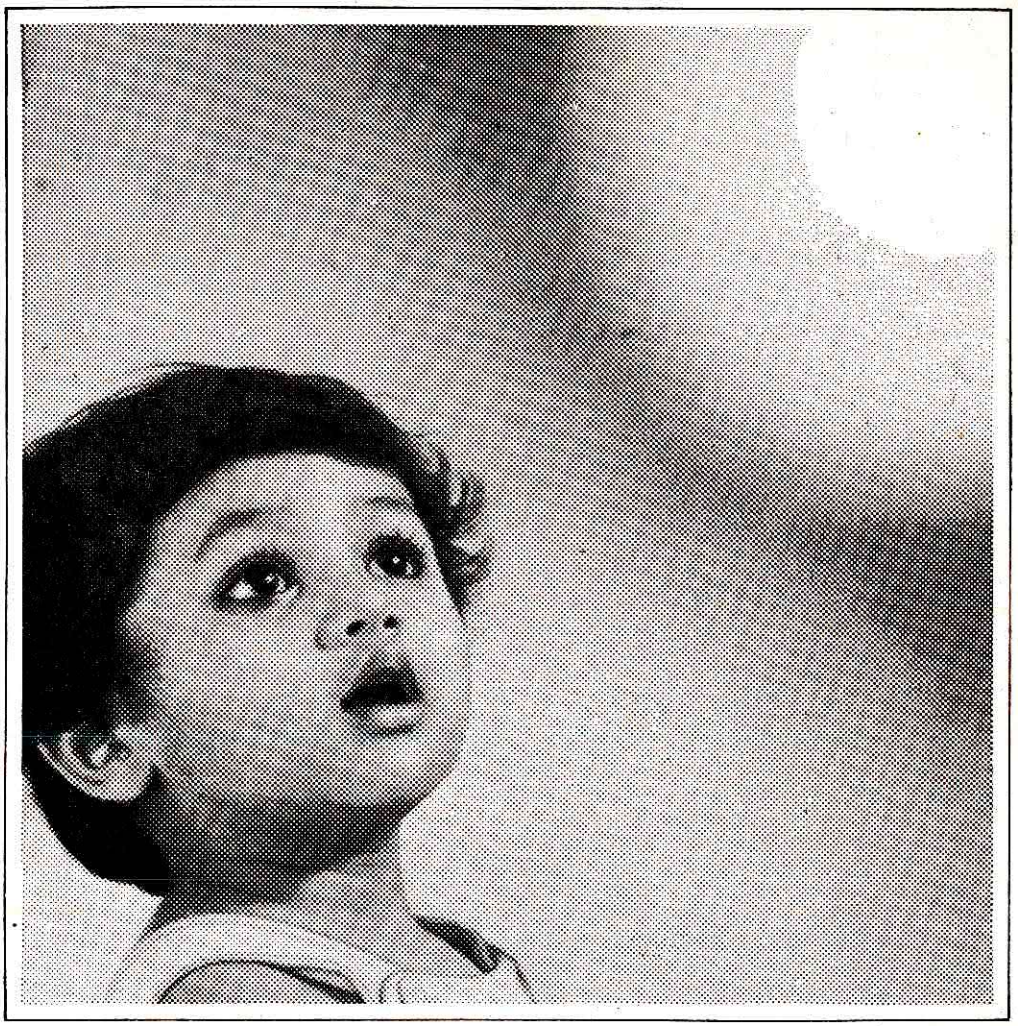

NUCLEAR POWER CORPORATION

STEPPING UP POWER GENERATION FOR GENERATIONS TO COM

Nuclear Energy from the unlimited energy source. Environmentally clean and safe. Indigenously developed and totally self-reliant, to meet the growing energy demand for a better quality of life for our increasing millions.

NPC committed to serving the nation, utilising India's vast nuclear resources for generation of power for generations to come.

NUCLEAR POWER CORPORATION
(A Govt. of India Enterprise)

16th & 20th floor, World Trade Centre 1,
Cuffe Parade, Bombay 400 005.

NPC. Fuelling a powerful future.

CONTOUR ADS-NP